वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

विवेक ज्योति

वर्ष ५९ अंक ३
मार्च २०२१

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मार्च २०२१

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक ३

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

ISSN 2582-0656

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ में श्रीरामकृष्ण देव के समाधि अवस्था के चित्रांकन को दर्शाया गया है।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

मार्च माह के जयन्ती और त्योहार

११	**महाशिवरात्रि**
१५	**श्रीरामकृष्ण देव**
२८	**श्रीचैतन्य महाप्रभु**
२९	**होली**

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान – रायपुर

२. प्रकाशन की नियतकालिकता – मासिक

३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक – स्वामी सत्यरूपानन्द

५. सम्पादक – स्वामी प्रपत्त्यानन्द

राष्ट्रीयता – भारतीय

पता – रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी – रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण – स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी वागीशानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी ज्ञानव्रतानन्द, स्वामी सत्येशानन्द और स्वामी अच्युतेशानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)

स्वामी सत्यरूपानन्द

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री नवीन सिंह, आर.के. नगर, बिलासपुर (छ.ग.)	१,५००/-
श्री पी.एन. पॉल, बरघटा रोड, बैंगलुरू (कर्नाटक)	१,०००/-
श्री माधव किशोर श्रीवास्तव, भरतपुर (राजस्थान)	१,०००/-
श्रीमती शोभा सिंह, सीतामढ़ी, राजपुर (बिहार)	१,००१/-
श्री गीतेश्वर शरण वर्शनीय, बस्नी, जोधपुर (राज.)	१,०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६४५.	श्री लक्ष्मण प्रसाद साहू, सी.आई.एफ. भिलाई (छ.ग.)	केन्द्रीय विद्यालय, सी.आई.एफ. ३रा बटालियन, भिलाई (छ.ग.)
६४६.	’’ ’’	केन्द्रीय विद्यालय, दुर्ग जेल रोड के पास, दुर्ग (छ.ग.)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगीऔर दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

वर्ष ५९ मार्च २०२१ अंक ३

श्रीरामकृष्ण-स्तुतिः

सदाकारमोंकारमन्त्रैकसारं
सदा निर्विकारं चिदानन्दपूरम्।
अणोरप्यणुं सर्वधीसाक्षिभूतं
गुरूणां गुरुं भावये रामकृष्णम्।।
भृशं कामिनीं कांचनं किंचनाप्य-
स्पृशन् सुप्तिकालेऽपि योऽभूदसंगः।
अतिश्लाघ्यवैराग्य सौभाग्यमूर्त्तिं
भवच्छेदिनं तं भजे रामकृष्णम्।।

– जो सारतत्त्व हैं, ओंकार मन्त्र के एकमात्र सार हैं, सर्वदा निर्विकार हैं, चैतन्य और आनन्द से परिपूर्ण हैं, अणु से भी अणुतर हैं (अणु के भी अणु स्वरूप), सभी बुद्धियों के साक्षीस्वरूप एवं गुरुओं के भी गुरु हैं, उन्हीं श्रीरामकृष्ण देव का मैं चिन्तन करता हूँ।

सोते समय भी जो कामिनी और कांचन का किंचित् स्पर्श नहीं कर पाते थे, अतिशय प्रशंसा योग्य वैराग्य और सौभाग्यदायक मूर्त्ति धारण करनेवाले एवं संसार के बन्धन को काटनेवाले उन्हीं श्रीरामकृष्ण देव का मैं भजन करता हूँ।

पुरखों की थाती

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिश्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय न दुखस्यान्तं भविष्यति।।७१७।।

– जब मनुष्य-जाति आकाश को भी मृगचर्म की भाँति समेटने में सक्षम हो जायगी, तब भी अपनी अन्तरात्मा में निहित दिव्य स्वरूप को जाने बिना उसके दु:खों का अन्त नहीं हो सकेगा। (उपनिषद्)

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः।।७१८।।

– जो व्यक्ति स्वयं दोषों से परिपूर्ण होते हुए भी दूसरों पर दोषारोपण करता रहता है और असमर्थ होते हुए भी क्रुद्ध होता रहता है, वह महामूर्ख है।

अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा सुशीलत्व-दमौ श्रुतं च।
पराक्रमश्चबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च।।७१९।।

– ये आठ गुण मनुष्य की शोभा में वृद्धि करते रहते हैं – ज्ञान, सुशीलता, इन्द्रिय-संयम, अध्ययन, पराक्रम, बहु-भाषिता, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता का बोध।

सम्पादकीय

श्रीरामकृष्ण अवतार का अस्त्र – प्रणाम

युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने अपने अन्तिम दिनों में स्वामी विवेकानन्द के मन में श्रीरामकृष्ण देव के अवतार होने के संशय में कहा था – ''जो राम, जो कृष्ण, इस समय वे ही रामकृष्ण के रूप में भक्तों के लिये अवतीर्ण हुए हैं।'' * यह सुनकर स्वामीजी चौंक गये और वहाँ से चले गये। श्रीराम ने धनुष-बाण और श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र धारण किया था, किन्तु श्रीरामकृष्ण ने कौन-सा अस्त्र-शस्त्र धारण किया? उनके हाथों में तो कोई प्रचलित अस्त्र-शस्त्र नहीं दिखता।

इस प्रश्न का उत्तर हमें श्रीरामकृष्ण के शिष्य गिरीश घोष से मिलता है, जिन्हें वे भैरव कहते थे। गिरीश घोष कहते थे – ''इस बार वे प्रणाम के द्वारा जगत पर विजय करने आये थे। कृष्ण अवतार में अस्त्र था बाँसुरी, चैतन्य अवतार में था नाम और इस बार है प्रणाम-अस्त्र।''[१]

भगवान जब अवतार लेते हैं, तो उनके अवतार का उद्देश्य असुर-विनाश और धर्म की स्थापना होती है। भगवान श्रीराम के अवतार के प्रयोजन के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं –

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।।[२]

– असुरों को मारकर देवों की स्थापना करने, वेदों की मर्यादा की रक्षा करने और संसार में यश का विस्तार करने के लिये श्रीराम का अवतार होता है।

श्रीकृष्ण ने भी अपने अवतार-उद्देश्य को बताया –

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[३]

– सज्जनों का परित्राण, दुष्टों का विनाश और धर्म की सम्यक् स्थापना के लिये मैं आविर्भूत होता हूँ।

भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण को रावण और कंस जैसे अन्यान्य राक्षसों का वध करना था, जिसके लिये उन्हें बाह्य अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता थी। कुछ दुष्ट ऐसे होते हैं, जिन्हें कितना भी समझाओ, किन्तु वे सुधरते नहीं। ये इतने अहंकारी और विमूढ़ होते हैं कि बार-बार पराजित होकर और भगवान का अतुल ऐश्वर्य, शक्ति देखकर भी नहीं सुधरते, परपीड़न करते रहते हैं, इसलिये भगवान के सम्मुख उनका वध करना ही अन्तिम उपाय होता है। अत: भगवान को दुष्ट राक्षसों के वध हेतु अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करना पड़ा। कई को भगवान उनके अहंकार का नाशकर उन्हें सुसंस्कृत धर्ममय जीवनयापन का अवसर देते हैं।

श्रीरामकृष्ण के समय हर व्यक्ति में रावण-कंस बैठा हुआ था। वर्षों की गुलामी से आत्मविश्वासहीनता, आत्मग्लानि, आधुनिक प्रभाव से ईश्वर पर अनास्था और अँग्रेजों के साथ-साथ राजा-महाराजाओं, जमींदारों द्वारा गरीब असहाय जनता पर अत्याचार का वातावरण था। लोगों की दृष्टि में धर्म, सेवा की परिभाषाएँ भिन्न थीं। अत: श्रीरामकृष्ण का उद्देश्य था, मानव में निहित जो अहंकार-फणि और संशय-राक्षस की वृत्ति है, उसका नाश कर उनके शुद्ध स्वरूप को अभिव्यक्त करना, उन्हें नर-नारायण की सेवा का अभिनव मन्त्र प्रदान करना, उन्हें शाश्वत धर्म की वास्तविक परिभाषा से अवगत करना, सर्वधर्मसमन्वय से परिचित कराकर धार्मिक द्वेष दूर करना, उनमें भगवद्भक्ति का संचार और ईश्वरीय आस्था जाग्रत करना।

अस्त्र-शस्त्रों के बल पर ईश्वर, धर्म पर स्थायी आस्था नहीं होती, ऐश्वर्य और शक्ति-क्षीणता के साथ वह भी नष्ट हो जाती है। जीवन में जब सभी अस्त्र-शस्त्र असफल हो जाते हैं, तब प्रेम-अस्त्र सहायक होता है। श्रीरामकृष्ण ने लोगों के हृदय में प्रवेश कर उन लोगों का अहंकार-नाश कर उनमें वैचारिक क्रान्ति लाने के लिये सबसे कठिन और सबसे सरल अदृश्य अस्त्र का प्रयोग किया और वह था, प्रणाम अस्त्र, जिसे प्रेम, सद्भावना और विनम्रता से ग्रहण किया जाता है।

प्रणाम अस्त्र कठिन क्यों? प्रणाम में सिर झुकाना पड़ता है। दूसरों के समक्ष अपने शरीर-मन को समर्पण करना पड़ता है, जिसे एक अहंकारी व्यक्ति कभी भी नहीं कर सकता। मध्यम अहंकारी व्यक्ति भी वस्तु, धन आदि दे देगा, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से किसी के सामने झुकेगा नहीं, इसलिये सम्पन्न अहंकारियों द्वारा किसी को प्रणाम करना तो कठिन ही है। सरल और अदृश्य इसलिये कि यह कोई स्थूल वस्तु धातु आदि नहीं है, सामने कुछ दिखता नहीं, जब प्रणाम करो,

तभी दिखता है। इसके धारण करने में कुछ व्यय नहीं होता, भार नहीं वहन करना पड़ता, इसलिये सरल और अदृश्य है। अत: श्रीरामकृष्ण ने इस प्रणाम-अस्त्र का प्रयोग तत्कालीन प्रसिद्ध लोगों के अहंकार को नष्ट करने के लिये किया।

गिरीश घोष को श्रीरामकृष्ण ने प्रणाम-अस्त्र से वशीभूत किया था। स्वामी अद्भुतानन्द जी (लाटू महाराज) के सान्निध्यप्राप्त श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय ने लाटू महाराज से सम्बन्धित एक प्रसंग का उल्लेख किया है, जिसमें वे प्रणाम और गिरीश घोष से सम्बन्धित घटना का वर्णन कर रहे हैं – ''भारतीय शिक्षापद्धति में प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा का भाव विद्यमान है। प्रणिपात के बिना हमारी शिक्षा पूरी नहीं होती, तथापि प्रणिपात का क्या तात्पर्य है, यह भी हम स्पष्ट रूप से नहीं जानते। लाटू महाराज के बलराम मन्दिर में निवास के समय मैंने उनसे प्रणिपात के विषय में जो कुछ सुना है तथा ठाकुर ने उन्हें प्रणिपात धर्म में दीक्षित करते समय जो उपदेश दिया था, वही लिख रहा हूँ – 'एक दिन धनी भक्त ने दोनों हाथ उठाकर लाटू महाराज को नमस्कार किया। इस पर उन्होंने उन भक्त से कहा – ''देखिये ! साधु-संन्यासी और देवता को दण्डवत् होकर प्रणाम करना चाहिये। वे (परमहंसदेव) कहते थे – 'ऐसे कुल्हाड़ी-प्रणाम से फल नहीं होता।' ''

यह सुनकर एक दूसरे भक्त ने लाटू महाराज से पूछा – ''महाराज ! यह कुल्हाड़ी-प्रणाम क्या चीज है?''

लाटू महाराज – ''अरे ! नहीं जानते? वही जो तुमलोग दोनों हाथ उठाकर मस्तक से लगाते हो, उसको वे (श्रीरामकृष्ण) कुल्हाड़ी प्रणाम कहते थे। एक दिन गिरीश बाबू ने ठाकुर को इसी प्रकार से कुल्हाड़ी-प्रणाम किया। इसके साथ ही उन्होंने हमारे सामने ही कमर झुकाकर गिरीश बाबू को प्रणाम किया। गिरीश बाबू ने पुन: ठाकुर को प्रणाम किया। इसी प्रकार प्रणाम करते-करते जब गिरीश बाबू धरती पर सोकर दण्डवत हो गये, तब ठाकुर ने उन्हें आशीर्वाद दिया।[४]

शास्त्रों में प्रणाम का बहुत महत्त्व बताया गया है। भक्तिशास्त्र में प्रणाम एक प्रमुख साधना है। भगवद्गीता में भी ज्ञानप्राप्ति हेतु पहले प्रणाम-साधना बताई गयी – **'तद्विद्धि प्रणिपातेन'**।[५]

एक भक्त ने किसी गलती पर लाटू महाराज से क्षमा माँगी, तब लाटू महाराज ने कहा – ''...वे (श्रीरामकृष्ण) क्या कहते थे, जानते हो? 'अपने समान होने पर नमस्कार करना, परन्तु जहाँ कोई तुमसे विद्या, बुद्धि, साधना या नाम-यश और धन में बड़ा हो, उसके सामने सिर झुकाकर प्रणाम करना चाहिए। जिसे प्रणाम किया जाता है, उसकी सभी बातों पर ध्यान देना चाहिए और उसका पालन करना चाहिए। उनके समक्ष अहंकार और अभिमान छोड़ देना चाहिए।' वे तो हमसे सर्वदा ही कहा करते थे, 'अरे ! मन-मुख एक करके प्रणाम करना। दिखावे के प्रणाम से कोई फल नहीं होता।' ''[६] एक अन्य प्रसंग में लाटू महाराज ने बताया कि कैसे ठाकुर ने दक्षिणेश्वर में प्रणिपात-धर्म में दीक्षित किया था, वे कहते हैं –''देखो ! वे (श्रीरामकृष्ण) तो सर्वदा सुनाया करते थे, 'अरे ! दण्डवत् होना सीखो, सब अभिमान दूर चला जायेगा।' ''[७]

गिरीश घोष बंगाल के एक प्रसिद्ध नाटककार थे। उन्हें अपनी कला का बहुत अहंकार था। इसके साथ ही दुर्गुण तो थे ही। ऐसे अहंकारियों को प्रेम और प्रणाम अस्त्र से ही श्रीरामकृष्ण ने सन्मार्ग पर लाया था। गिरीश की अन्य सन्तों के प्रति जो धारणा थी, उसके सम्बन्ध में वे कहते हैं – ''मैं सोचा करता था, जो लोग स्वयं को परमहंस या योगी मानते हैं, वे किसी से बात नहीं करते, किसी को प्रणाम नहीं करते। विशेष आग्रह करने पर ही वे किसी की सेवा-ग्रहण करते हैं। किन्तु इस परमहंस का व्यवहार तो बिलकुल भिन्न था। ये अतिशय विनम्रता से धरती पर मस्तक टेककर प्रणाम करते हुए हर किसी का सम्मान कर रहे थे।''[८]

श्रीरामकृष्ण देव कैसे गिरीश घोष को प्रणाम करते थे, इस घटना के सम्बन्ध में गिरीश घोष स्वयं कहते हैं – ''मेरे नाटक 'चैतन्यलीला' का स्टार थियेटर में मंचन हो रहा था। एक दिन जब मैं थियेटर के बाहरी प्रांगण में टहल रहा था, तभी श्रीरामकृष्ण देव के एक भक्त, महेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने आकर मुझसे कहा, ''परमहंसदेव नाटक देखने आये हैं। यदि आप उन्हें नि:शुल्क पास दे सकें, तो बेहतर होगा, अन्यथा हमलोग उनके लिये एक टिकट खरीद लेंगे।''

मैंने उत्तर दिया – ''उन्हें अपना टिकट नहीं खरीदना होगा, किन्तु अन्य लोगों को खरीदना पड़ेगा।'' ऐसा कहते हुए मैं उनका अभिनन्दन करने हेतु आगे बढ़ गया। मैंने देखा कि वे गाड़ी से उतरकर थियेटर के प्रांगण में प्रवेश कर रहे थे। मैंने उन्हें प्रणाम करना चाहा, किन्तु मेरे प्रणाम

शेष भाग पृष्ठ १३४ पर

श्रीरामकृष्ण और शिकागो वक्तृता

स्वामी शुद्धिदानन्द

अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, कोलकाता

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी शुद्धिदानन्द जी ने श्रीरामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई नगर के सभागार में ५ अक्तूबर, २०१८ को आयोजित शिकागो वक्तृता की १२५वीं वर्षगाँठ के अवसर पर दिया था। इसका अनुलेखन वीरेन्द्र कुमार वर्मा ने किया है।)

मेरा आज का विषय है – 'श्रीरामकृष्ण और शिकागो वक्तृता'। मैं इसे विस्तार रूप से आपके सामने रखने का प्रयास करूँगा। भगवद्गीता में एक श्लोक है। श्रीकृष्ण वहाँ पर कहते हैं –

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

(गीता १०/९)

जहाँ भक्तों का समागम होता है, जब दो भक्त आपस में मिलते हैं, तो वे भगवान के बारे में बातें करते हैं। वे प्रभु परमेश्वर का स्मरण करते हैं। वे उन्हीं की लीला का गान करते हैं और उसी में उनका आनन्द होता है। यह भक्ति से आनेवाला आनन्द है, प्रभु की लीला का आनन्द है और उस आनन्द का असर ही कुछ विशेष होता है।

जब हम 'शिकागो वक्तृता' की बात करते हैं, तो हमारी आँखों के सामने स्वामी विवेकानन्द जी का चित्र आता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शिकागो धर्ममहासभा के वे ही नायक थे। उस धर्ममहासभा के बारे में अन्य जानकारियों की कोई बात नहीं होती, यदि कोई बात होती है, तो केवल स्वामी विवेकानन्द जी की ही चर्चा होती है। आप लोगों को लग रहा होगा कि मैंने अपना विषय 'श्रीरामकृष्ण और शिकागो वक्तृता' क्यों रखा है? हम आज विचार करेंगे कि श्रीरामकृष्ण ने धर्म-महासभा के लिये क्या किया है। स्वामी विवेकानन्द तो मात्र एक यन्त्र थे। इस यन्त्र को तैयार किया गया है। हम देखते हैं कि धर्ममहासभा को सम्बोधित करने के लिए मंच पर स्वामी विवेकानन्द खड़े हैं, लेकिन उनके पीछे कौन हैं? इसे हमें नहीं भूलना चाहिए। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रभु श्रीकृष्ण कहते हैं –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

(गीता ४/७-८)

यह बात इतिहास में प्रमाणित है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तो वही परम परमेश्वर मनुष्य शरीर धारण करके धर्म की संस्थापना के लिए इस धरा पर आते हैं। जब वे आते हैं, तो अपने साथ लीला सहचरों को, अपने यन्त्र को साथ लेकर आते हैं। सभी अवतारों में हम इसे पाते हैं। इस बार, आधुनिक युग में वही प्रभु परमेश्वर श्रीरामकृष्ण इस धरातल में आए, तो अपनी धर्म-संस्थापना के महान कार्य के लिए उन्होंने अपने किस यन्त्र को चुना? वे कौन थे? वे सप्तऋषि मण्डल में समाधिस्थ एक ऋषि थे। श्रीरामकृष्ण उस ऋषि की समाधि को भंग करके इस धरातल पर लेकर आते हैं, जिनको हम नरेन्द्रनाथ के रूप में जानते हैं।

शिकागो विश्वधर्म-महासभा में स्वामी विवेकानन्द

अब देखिए, उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व की क्या दशा थी? भारत की क्या परिस्थितियाँ थी? पूरे विश्व में धर्म और अध्यात्म के प्रति लोगों के मन में संशय और सन्देह का भाव था। भारत जो धर्म और अध्यात्म की जन्मभूमि है,

वहाँ भी आध्यात्मिकता का प्रकाश या दिया टिमटिमा रहा था। भौतिकता का प्रभाव था। ऐसे परिवेश में लोगों के मन से आध्यात्मिकता पर से आस्था उठ चुकी थी। भगवान हैं या नहीं? हम लोग किस चीज की पूजा करते हैं? यह जो हजारों सालों से चली आ रही जीवन शैली या परम्परा है, इसका क्या कोई अर्थ है? क्या यह केवल एक अंधविश्वास है? अब इस संशय का निराकरण कौन करता? कोई साधारण व्यक्ति इसका निराकरण नहीं कर सकता था? प्रभु के विषय में यदि संशय हो, तो इसका निराकरण प्रभु परमेश्वर ही कर सकते हैं। कोई जीव निराकरण नहीं कर सकता। इसी महान कार्य के लिए श्रीरामकृष्ण देव का अवतरण हुआ है और वे अपने साथ इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए एक यन्त्र के रूप में नरेन्द्रनाथ को लेकर आते हैं।

मैं आपका ध्यान कुछ घटनाओं की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। आप लोग श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन-चरित से परिचित हैं, उनके जीवन की कुछ घटनाओं पर हम विचार करेंगे, जिनमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है। हम यह भी देखेंगे कि श्रीरामकृष्ण देव किस तरह नरेन्द्रनाथ को अपने कार्य को सम्पन्न कराने के लिए, एक यन्त्र के रूप में तैयार करते हैं। इसके पीछे काफी प्रशिक्षण रहा है। यह एक सरल कार्य नहीं था। यदि किसी युद्ध के लिए जाना होता है, तो सैनिकों को विशेष रूप से प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। उसी तरह श्रीरामकृष्ण देव पग-पग पर नरेन्द्रनाथ की गलतियों को दूर करके उन्हें इस महान कार्य के लिए तैयार करते हैं।

मूल बात यह है कि नरेन्द्रनाथ को जो कार्य करना था, वह क्या कार्य था? सम्पूर्ण विश्व के सामने हिन्दू सनातन धर्म के यथार्थ रूप को रखना था। विश्व के सबसे प्राचीन धर्म को, जो सभी धर्मों की माता है, ऐसे धर्म के यथार्थ स्वरूप को विश्व के सामने प्रस्तुत करना था। यह कितना महान कार्य है? इसकी कल्पना करना भी बहुत कठिन है। हम पीछे मुड़कर उस काल में यदि चले जाएँ, तो उस काल की जो परिस्थितियाँ थीं, उस दृष्टिकोण से यदि हम इस कार्य की कल्पना करें, तब हमें अनुभव होगा कि यह कार्य कितना कठिन और दुरुह था ! हिन्दू धर्म की यदि कोई परिभाषा विश्व के सामने रखनी हो, तो हमें एक बात याद रखनी चाहिए कि जिस चीज को हम लोगों को समझाना चाह रहे हैं, उसके बारे में पहले स्वयं पूरी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। हिन्दू धर्म के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान यदि विश्व पटल पर रखना है, तो हिन्दू धर्म के सम्पूर्ण पहलुओं को स्वयं अपने जीवन में अनुभव करना होगा। हिन्दू धर्म के मात्र किसी एक पक्ष का अनुभव करके सम्पूर्ण सनातन हिन्दू धर्म के बारे में पूरी जानकारी दे पाना सम्भव नहीं होगा। यदि कोई हिन्दू धर्म की मूर्तिपूजा के सिद्धान्त को लेकर हिन्दू धर्म की व्याख्या करे कि यही सनातन हिन्दू धर्म है, तो यह सही व्याख्या नहीं होगी। इसी तरह कोई हिन्दू धर्म के किसी अन्य एक पक्ष को लेकर सनातन हिन्दू धर्म की व्याख्या करे, वह भी सही नहीं होगा। इसके लिए व्यक्ति को सनातन हिन्दू धर्म के सभी पक्षों, सभी पहलुओं और सभी पहलुओं के स्तरों का ज्ञान और अनुभव होना अनिवार्य है।

हिन्दू सनातन धर्म क्या है? श्रीरामकृष्ण देव ने कैसे नरेन्द्रनाथ को इस कार्य के लिए तैयार किया था? यह विषय बहुत ही रोचक है। सरल शब्दों में कहा जाय, तो हिन्दू धर्म एक जीवन शैली है, जिसमें अति उच्च, मन, बुद्धि, इन्द्रियों के परे जो निर्गुण-निराकार परम तत्त्व है, जिसको हम अपनी किसी भी इन्द्रियों से जान नहीं सकते, पकड़ नहीं सकते, मन से अग्राह्य है। यह इन्द्रिय, मन और बुद्धि के पकड़ में नहीं आनेवाला अद्वैत ब्रह्म तत्त्व है, जो निर्गुण-निराकार से लेकर सगुण-साकार है, विशिष्टाद्वैत भी है। हम इसकी मूर्ति में पूजा करते हैं। हम कर्मकाण्ड में लग जाते हैं। सनातन हिन्दू धर्म की व्यवस्थाएँ इतनी विराट हैं कि कोई भी व्यक्ति इस आध्यात्मिक विचार-धारा के बाहर नहीं है। सभी व्यक्तियों का मन एक जैसा नहीं है। किसी के भीतर ऐसी क्षमता हो सकती है, जो मूर्ति पूजा की अपेक्षा स्वरूप की उपासना करता है और उससे वह निर्गुण ब्रह्म को पहचान लेगा। लेकिन सभी लोग ऐसा कर पाएँगे क्या? बहुत-से लोग ऐसे हैं, जिनकी उपासना-पद्धति अलग हो जाती है। कुछ लोग विशिष्ट अद्वैत की दृष्टि से उपासना करते हैं, कुछ लोग द्वैत की दृष्टि से उपासना करते हैं और स्थूल रूप में आ जाएँ, तो प्रतीक को लेकर कुछ लोग उपासना करते हैं, जिसमें प्रतिमा की आवश्यकता होती है। यहाँ श्रीरामकृष्ण देव की प्रतिमा है। हिन्दू सनातन धर्म को यदि समझना हो, तो मूर्तिपूजा से लेकर एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मतत्त्व तक, सभी स्वरूप की अनुभूति और सभी स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है।

अब देखिए नरेन्द्र की क्या स्थिति थी? नरेन्द्र जब

पहली बार १८८१ में श्रीरामकृष्ण से मिलते हैं, तो नरेन्द्र में अनेक त्रुटियाँ थीं। नरेन्द्र तब तक ब्राह्म-समाज के विचारों से प्रभावित होकर प्रभु परमेश्वर के सगुण-निराकार रूप को लेकर चल रहे थे। भविष्य में सनातन हिन्दू धर्म के व्याख्याकार अपने जीवन के प्रारम्भ में हिन्दू धर्म के एक अंग को लेकर चल रहे थे। मूर्तिपूजा को नहीं मानते थे। उस अतीन्द्रिय, इन्द्रियातीत ब्रह्मतत्त्व को, निर्गुण-निराकार को नहीं मान रहे थे। अवतार को नहीं मान रहे थे। गुरु को नहीं मान रहे थे। केवल सगुण-निराकार तत्त्व के एक पक्ष को ही माननेवाले नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण देव के पास आते हैं और वहाँ से उनका प्रशिक्षण आरम्भ होता है।

आज हम शिकागो वक्तृता की बात कर रहे हैं, जहाँ पर विश्व के सामने स्वामी विवेकानन्द सनातन हिन्दू धर्म की एक ऐसी परिभाषा रखते हैं, जो इतिहास में कभी नहीं हुआ। लेकिन वे वहाँ तक पहुँचे कैसे? यह एक बिलकुल अलग कहानी है। धीरे-धीरे श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को ये सब चीजें स्वीकार करवाकर ही रहते हैं। अद्वैत और मूर्तिपूजा को मानने पर विवश कर देते हैं। जगन्माता को उनको मानना ही पड़ता है। सभी स्तरों की अनुभूति उनको कराते हैं, तब जाकर नरेन्द्र युगाचार्य, युगनायक विवेकानन्द बनते हैं। यह इतना सरल नहीं था।

जब हम शिकागो धर्ममहासभा की बात करते हैं, तो सामने स्वामी विवेकानन्द दिखाई देते हैं, लेकिन इन्हें तैयार किसने किया था? इनके स्रष्टा हैं प्रभु श्रीरामकृष्ण। यह एक सुन्दर अध्याय है और उनकी सुन्दर लीला हमें देखने को मिलती है।

ये नरेन्द्र पूर्वकाल में अद्वैत को नहीं मानते थे। अद्वैत का मजाक उड़ाते थे। कहते थे – शास्त्र में लिखा हुआ है, सब ब्रह्म है, सब भगवान है। ये सब गांजा पीकर लिखा गया है। कोई पागल ही बोलेगा कि यह टेबल ब्रह्म है, ये दीवार ब्रह्म है। दक्षिणेश्वर की एक घटना है। नरेन्द्र और हाजरा महाशय दोनों आपस में बातें कर रहे थे। पीछे से श्रीरामकृष्ण देव उनकी बात सुनकर आते हैं और 'नरेन्द्र, तू क्या बोला रे, क्या बोला रे' कहते-कहते उनके कन्धे का स्पर्श कर देते हैं। स्पर्श करते ही नरेन्द्र को ऐसी अनुभूति होती है, जो कई दिनों तक उनको नहीं छोड़ती। वह अनुभूति एकमेवाद्वितीय ब्रह्म की अनुभूति थी। नरेन्द्र देखते हैं कि उनके चारों ओर शास्त्रों में लिखित 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ही है। हम जगत में विचित्रताएँ, विविधिताएँ देखते हैं, किन्तु इसके पीछे, इसके मूल में विद्यमान जो तत्त्व है, उसकी अनुभूति श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को कराते हैं। कई दिनों तक ऐसा हुआ कि रास्ते में चलते समय सामने से गाड़ी आ रही है, लेकिन नरेन्द्र रास्ते में ही खड़े हैं, हट नहीं रहे हैं, क्योंकि उनके अन्दर की जो भेद-दृष्टि है, वह समाप्त हो गई है। मैं भिन्न हूँ और वह गाड़ी भिन्न है, गाड़ी आ रही है, तो मुझे हट जाना चाहिए, उन्हें यह बोध ही नहीं है। सब एक हो गया है। सड़क के किनारे लगी रेलिंग पर अपना सर पटक-पटककर कहते हैं कि यह रेलिंग सत्य है या झूठ? क्योंकि उनको रेलिंग में कुछ और दिखाई दे रहा है। उसमें एकमात्र ब्रह्मतत्त्व दिखाई दे रहा है। उनकी माँ घर में खाना परोस रही हैं, लेकिन वे खा नहीं पा रहे हैं। क्योंकि खाने के लिए भेद-दृष्टि चाहिए कि ये खाना है, मैं खानेवाला हूँ और ये जो परोस रही है, यह मेरी माँ है। किन्तु उन्हें सर्वत्र ब्रह्म दिखाई दे रहा है। सारी भेद-बुद्धि समाप्त हो गई। कई दिनों तक यह चलता रहा। पहली बार श्रीरामकृष्ण उनको अद्वैत तत्त्व की अनुभूति को स्पर्श द्वारा प्रदान करते हैं। इस प्रकार नरेन्द्र इसे स्वीकार करते हैं कि अद्वैत तत्त्व जिनका गुणगान हमारे उपनिषदों में है, उसकी अनुभूति उनको हुई।

अब दूसरी घटना देखिए। अद्वैत की, निर्गुण-निराकार की महिमा तो वे मान चुके हैं, किन्तु जगन्माता को नहीं मानते थे। दक्षिणेश्वर काली मन्दिर में जाकर जो लोग प्रणाम करते थे, सिर झुकाते थे, उनका वे मजाक उड़ाते थे। राखाल महाराज को डाँटते थे। कहते थे – 'तू कबसे इनके सामने जाकर सिर झुकाने लगा?' नरेन्द्र को मूर्ति के सामने सर झुकाने में इतनी घृणा थी ! १८८४ की घटना है। आकस्मिक उनके पिताजी का निधन हो जाता है। घर में अनपेक्षित बहुत गरीबी आ जाती है ! घर में माँ-भाई-बहन सब हैं। उनको दो समय का भोजन तक नहीं मिलता है। उनके जीवन का वह भी एक दौर था, जिसका वर्णन पुस्तकों में पढ़कर हम सब अनुभव कर सकते हैं। ऐसी दशा में नरेन्द्र ने नौकरी पाने की बहुत कोशिश की, किन्तु असफल रहे। कई महीनों तक ऐसा ही चला। परन्तु उनका आत्मसम्मान इतना था कि वे किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते थे। अन्त में वे इतने निराश-हताश हो गए कि उनको लगा – हम श्रीरामकृष्ण से जाकर निवेदन करेंगे कि आप मेरे लिए कुछ करें। नरेन्द्रनाथ यह जानते थे कि श्रीरामकृष्ण उनको बहुत प्रेम करते हैं, बहुत स्नेह

करते हैं। उनको यह पता था कि यदि वे श्रीरामकृष्ण से यह निवेदन करेंगे, तो वे ना नहीं कहेंगे। उन्होंने प्रारम्भ से ही देखा था कि श्रीरामकृष्ण सदैव माँ, माँ कहते रहते हैं। सदैव माँ से पूछकर ही सब काम करते हैं। उनसे बातें करते रहते हैं। नरेन्द्रनाथ यह समझते थे कि श्रीरामकृष्ण में कुछ विशेष बात अवश्य है। नरेन्द्रनाथ श्रीरामकृष्ण के पास जाकर कहते हैं – 'ठाकुर आप सदैव माँ, माँ कहते हैं और माँ आपकी बातें सुनती हैं। आप माँ से मेरे लिए प्रार्थना कर दीजिए। माँ से कहिए कि मेरे परिवार की दशा को ठीक कर दें।' श्रीरामकृष्ण का उत्तर कितना सुन्दर है ! वे कहते हैं – मैं ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकता। यह भक्ति का एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है। भक्ति का मूल सिद्धान्त है कि भक्ति में भक्त भगवान से संसार की कोई चीज नहीं माँगता। संसार की कोई चीज भगवान से माँगते हैं, तो वह भक्ति नहीं है, सौदा है, व्यवसाय है। आप भक्ति के किसी आचार्य की बात सुनेंगे या नारदभक्ति-सूत्र पढ़ेंगे, तो जानेंगे कि सच्चा भक्त केवल भगवान के चरणों में प्रेम हो, यही चाहता है और भगवान से यही माँगता है। इसलिये श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से कहते हैं – मैं ऐसी प्रार्थना नहीं कर सकता। तुम स्वयं जाकर माँ से प्रार्थना क्यों नहीं करते ! माँ तो वहाँ बैठी हैं। तुम स्वयं जाकर माँ से प्रार्थना करो, वे सुन लेगीं। आज का दिन भी बहुत अच्छा है। तुम जाओ, प्रार्थना करो। तब नरेन्द्र स्वयं जाते हैं। दक्षिणेश्वर मन्दिर में भवतारिणी माँ खड़ी हैं। सामने नरेन्द्र खड़े हैं। नरेन्द्र एकटक उस विग्रह को देखकर खड़े हैं। किन्तु जो आशा लेकर आए थे, सब भूल जाते हैं। वे माँ से कहते हैं – 'माँ, मुझे विवेक दो, मुझे वैराग्य दो, मुझे भक्ति दो, मुझे ज्ञान दो।' वे वापस श्रीरामकृष्ण के पास आते हैं। श्रीरामकृष्ण पूछते हैं – ''क्या रे, माँ से कहा?'' नरेन्द्र कहते हैं – 'मैं भूल गया। वहाँ मैने विवेक-वैराग्य, भक्ति-ज्ञान माँगा। असली चीज माँगना तो भूल गया।' श्रीरामकृष्ण कहते हैं – 'कैसा आदमी है रे तू ! दुबारा जा। माँ से माँग ले, जो तू चाहता है।' दूसरी बार भी वही हुआ। तीसरी बार भी वही हुआ। तब नरेन्द्र समझ गए कि श्रीरामकृष्ण कुछ चाल चल रहे हैं। उन्हीं का कुछ खेल है। इस घटना

का निष्कर्ष बहुत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दू सनातन धर्म के प्रचारक को हिन्दू धर्म के प्रत्येक पक्ष का अनुभव होना जरूरी है; प्रत्येक स्तर की अनुभूति होना जरूरी है, तभी जाकर यथार्थ हिन्दू धर्म की व्याख्या, यथार्थ उसकी परिभाषा विश्व के सामने रखने की सामर्थ्य उसमें आएगी। अगले दिन सबेरे नरेन्द्र सो रहे हैं। नरेन्द्र की नींद टूटी नहीं है। कोई उनको उठाने जाता है, तो श्रीरामकृष्ण कहते हैं –'अरे, उसे उठाओ मत, वह सारी रात सोया नहीं है। सारी रात माँ-माँ करके यहाँ पर घूम रहा था।' ये माँ को नहीं माननेवाला नरेन्द्र अब सारी रात माँ, माँ, माँ कहकर घूमता रहा। मेरे नरेन्द्र ने माँ को मान लिया, मेरे नरेन्द्र ने माँ को मान लिया ! वास्तव में उस दिन यह हुआ था कि नरेन्द्र को उस दिन भवतारिणी के सगुण-साकार स्वरूप की अनुभूति हुई और नरेन्द्र ने अब मूर्ति-पूजा को भी मान लिया।

तीसरी बात। नरेन्द्र अवतार को नहीं मानते थे। देखिए कैसे श्रीरामकृष्ण देव के द्वारा पाँच-छह वर्षों की अवधि में एक-एक करके युगनायक विवेकानन्द को तैयार किया गया। तब कहीं जाकर विश्व धर्मसभा के लिए वे प्रस्तुत हुए हैं, परिपक्व हुए हैं। नरेन्द्र अवतार को नहीं मानते थे। वह प्रसिद्ध घटना है। काशीपुर उद्यान में निवास के समय जब श्रीरामकृष्ण कर्क-रोग से पीड़ित थे। बिस्तर पर पड़े हुए हैं। उनकी महासमाधि में कुछ दिन बाकी थे। उन्हें बहुत शारीरिक पीड़ा थी। उस दिन नरेन्द्र, श्रीरामकृष्ण को एकटक देखते हैं और मन-ही-मन सोचते हैं, 'इस परिस्थिति में भी अगर ठाकुर कहें कि वे अवतार हैं, तब मैं उन्हें अवतार अवश्य मानूँगा।' सबके अन्दर बैठे अन्तर्यामी श्रीरामकृष्ण समझ गए कि नरेन्द्र के मन में क्या चल रहा है। वे कह उठते हैं – ''क्या तुझे अब भी विश्वास नहीं हुआ? सच कह रहा हूँ, जो राम, जो कृष्ण वे ही इस बार इस शरीर में रामकृष्ण हुए हैं, पर हाँ, तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं।'' अब नरेन्द्र ने अवतार भी मान लिया।

नरेन्द्र गुरु को नहीं मानते थे। नरेन्द्र ने पाँच-छह साल

तक श्रीरामकृष्ण के सम्पर्क में आकर देख लिया था कि श्रीरामकृष्ण ऐसे उत्तम गुरु हैं, जो स्पर्श मात्र से लोगों को नए सिरे से गढ़ सकते हैं। श्रीरामकृष्ण ऐसे आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न महापुरुष थे, जो न केवल स्पर्श मात्र से, वरन दृष्टि मात्र से, इच्छा मात्र से लोगों को नए सिरे से गढ़ने की सामर्थ्य रखते थे। गुरु को मनवाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ा। गुरु की क्या क्षमता होती है, यह उन्होंने पाँच-छह वर्ष देखा था, परखा था।

शिकागो धर्ममहासभा में जाने के लिए और दो चीजों की जरूरत थी। ये भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसकी छबि, विवेकानन्द जी के व्याख्यानों में परवर्ती काल में हम सुन पाते हैं। वह घटना है – सभी भक्त दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के कमरे में बैठे हैं। वैष्णवों का जो मूल सिद्धान्त है, उसको लेकर कुछ बातें हो रही थी। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, पहली बात है – भगवान के नाम में विश्वास होना चाहिए। दूसरी बात है – जीवों पर दया करनी चाहिए। तीसरी बात है – वैष्णव, सब भक्तों की सेवा करनी चाहिए। श्रीरामकृष्ण स्वयं ये बात कह रहे हैं, किन्तु उन्हें लगता है कि ये ठीक नहीं है कि जीव के ऊपर दया करें। जीव के ऊपर दया करनेवाले हम कौन होते हैं ! हम स्वयं तो कीट और कृमि की तरह हैं, फिर दूसरे जीवों पर हम दया करेंगे ! जीव पर दया नहीं, शिवज्ञान से जीव की सेवा। यह उनके मुख से निकल जाता है। श्रीरामकृष्ण उस समय बहुत उच्च भावावस्था में थे। उनकी उस भावावस्था में उच्चरित वाणी को उपस्थित सबने सुना, लेकिन कोई भी उस बात को पकड़ नहीं पाता है। किन्तु नरेन्द्र जब ये सुनते हैं, तो उन्हें यह समझ में आता है, यह आधुनिक युग के लिए मन्त्र स्वरूप है। शिवज्ञान से जीवसेवा, सबके भीतर एक ही परमात्मा को देखकर सबकी सेवा करना, यही इस युग के लिए मंत्रस्वरूप काम करेगी।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति सः पश्यति।।

(गीता १३/२७)

भगवद्गीता का यह जो दृष्टिकोण है कि आँखें खोलकर के सबमें प्रभु परमेश्वर को देखो, तो श्रीरामकृष्ण ने उनको यह दृष्टि प्रदान की थी।

एक और घटना है, जिसके बाद उनका प्रशिक्षण पूरा हुआ था। काशीपुर में विवेकानन्दजी को अद्वैत की अनुभूति तो हो चुकी थी, किन्तु अब उनको सदा अद्वैत में रहने की तीव्र इच्छा जगी। उनकी इच्छा थी कि उस निर्विकल्प समाधि को वे ध्यान के द्वारा प्राप्त करें और सदैव उसी में डूबे रहें। बहुत दिनों से वे श्रीरामकृष्ण से अद्वैत में डूबे रहने की याचना करते थे। श्रीरामकृष्ण ने कुछ कहा नहीं। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि जब नरेन्द्र ध्यान कर रहे थे, तो अचानक इस भौतिक जगत को पार करके देह, मन, बुद्धि और अहंकार को पार करके, अतीन्द्रिय जगत में निर्गुण-निराकार भूमि पर प्रवेश कर जाते हैं और समाधि में लीन हो जाते हैं। अद्वैत की अनुभूति निर्विकल्प समाधि की स्थिति को वे प्राप्त करते हैं। उनके हृदय का स्पन्दन बन्द हो गया। बाहर से देखने पर वे मृत शरीर की तरह पड़े हुए थे। सभी लोग घबरा गए। वे लोग दौड़कर श्रीरामकृष्ण से कहते हैं – 'ठाकुर, ठाकुर! नरेन्द्र को कुछ हो गया है, चलकर देखिए।' श्रीरामकृष्ण कहते हैं – 'उसे कुछ नहीं हुआ है। बहुत दिन से हठ कर रहा था। मुझे निर्विकल्प समाधि चाहिए ! निर्विकल्प समाधि चाहिए ! अभी उसे निर्विकल्प समाधि हुई है। उसे वहीं पर रहने दो।' अब निर्विकल्प समाधि से उतरने के बाद नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण से कहते हैं – ठाकुर, मुझे उसी में रहने दीजिये, मैं सदैव निर्विकल्प समाधि की भूमि में ही रहना चाहता हूँ। मैं केवल बीच-बीच में आहार ग्रहण करने के लिए नीचे आऊँगा। कोई भी गुरु अपने चेले के मुँह से यह बात सुने, तो साधारण गुरु तो बहुत खुश होगा कि मेरा शिष्य सदैव निर्विकल्प समाधि में रहना चाहता है। किन्तु श्रीरामकृष्ण साधारण गुरु नहीं थे। वे कहते हैं – 'अरे, ये तू क्या बोल रहा है रे नरेन्द्र ! तेरी इतनी नीच और तुच्छ बुद्धि ! मैं तो सोचा था कि तू एक विशाल बरगद की तरह होगा, जिसकी छाया में आकर हजारों-हजारों लोग थोड़ी शान्ति का अनुभव करेंगे। और तू एक छोटी-सी चीज माँग रहा है कि सब समय निर्विकल्प समाधि में डूबा बैठा रहेगा। मैं तुम्हें उससे भी बड़ी अवस्था दिखाता हूँ, आँखें खोलकर देखो – सर्वत्र एक ही प्रभु परमेश्वर हैं। आँखें बन्द कर यदि भगवान हैं, तो आँखे खोलकर भी भगवान हैं। यह शिक्षा भी श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्रनाथ को दिया।

इस प्रकार से पाँच छह वर्षों के अन्तराल में नरेन्द्र के सामने श्रीरामकृष्ण ने सनातन धर्म के सब स्तरों की अनुभूति उनको करा दी। तब वे सनातन धर्म और सनातन धर्म के विग्रहस्वरूप श्रीरामकृष्ण से अवगत हो गए। पहली बात, वे सनातन धर्म के मात्र एक अंग से नहीं, अपितु सनातन

धर्म के जितने भी अंग हैं, जितने भी पहलू हैं, जितनी भी उपासना पद्धतियाँ हैं, जितनी भी अनुभूतियाँ हैं, उन सबसे परिचित हो गए। दूसरा, सनातन धर्म के जो विग्रह स्वरूप श्रीरामकृष्ण हैं, उनसे भी अवगत हो गए। दो कार्य हो गया।

तीसरा कार्य बाकी था, वह था, भारतमाता से अवगत होना। श्रीरामकृष्ण अपना शरीर १८८६ में छोड़ देते हैं। उसके बाद नरेन्द्र कलकत्ते से निकल पड़ते हैं। वे पूरे भारत का परिभ्रमण कर देखते हैं। उस दौरान नरेन्द्र को भारतवर्ष की मेरुदण्ड की अनुभूति होती है। वे भारतवर्ष के नब्ज को पहचान जाते हैं। यह जानना बहुत जरूरी था। वे समझ जाते हैं कि भारत का मेरुदण्ड सनातन धर्म है। यहाँ की मिट्टी के कण-कण में एक ही चीज स्पन्दित होती है, वह है आध्यात्मिकता। आध्यात्मिकता को, सनातन धर्म को छोड़ दें, तो भारत मर जाएगा। सनातन धर्म को छोड़कर भारतवर्ष का कोई अस्तित्व ही नहीं है। इसकी भी अनुभूति नरेन्द्रनाथ करते हैं। अब नरेन्द्र शिकागो धर्ममहासभा में खड़े होकर पूरे विश्व को सम्बोधित करने के लिए तैयार होते हैं।

नरेन्द्र ने तीन चीजें सीखीं। पहली, सनातन धर्म और उसका परिपूर्ण रूप, दूसरी उसी सनातन धर्म के विग्रह-स्वरूप अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण से परिचित होते हैं और तीसरी, भारतवर्ष से, भारत-माता से, अवगत होते हैं। अब ये युगाचार्य विश्व के सामने सनातन धर्म की, अपने गुरु की और भारतवर्ष की बात करने हेतु तैयार होते हैं।

आइये, अब हम शिकागो वक्तृता की ओर चलें। शिकागो वक्तृता में हमें क्या मिलता है? वहाँ उन्होंने छह व्याख्यान दिए हैं। इन छहों व्याख्यानों में हमें क्या देखने को मिलता है? अगर आप गौर से पढ़ेंगे, तो पाएँगे कि स्वामी विवेकानन्द के भीतर केवल तीन धुन बजती है। इस तीन धुनों से जो संगीत उत्पन्न होता है उसका नाम है – शिकागो वक्तृता। वे तीन धुन कौन से हैं? एक है सनातन धर्म, दूसरा है सनातन धर्म के विग्रह स्वरूप श्रीरामकृष्ण और तीसरा है भारतवर्ष। इन तीन धुनों से निकला हुआ संगीत है – शिकागो वक्तृता। स्वामी विवेकानन्द के मुँह से निकला हुआ शिकागो वक्तृता और कुछ नहीं है। विवेकानन्द कुछ नहीं हैं, मात्र एक यन्त्र हैं, एक ढाँचा हैं, जिसके भीतर से सनातन धर्म बोल रहा है, भारत-माता बोल रही है और जिसके अन्दर से उनके गुरुदेव बोल रहे हैं। शिकागो वक्तृता की बात करते समय हमें इन सबको याद रखना चाहिए।

विवेकानन्द ने जो इतना कुछ कहा, यह हम सुनते हैं, लेकिन हम इस चीज को नहीं सोचते हैं कि यह विवेकानन्द तैयार हुए कैसे? उनके पीछे की दिव्य प्रेरणा शक्ति क्या है? ये तीन चीजें जो हमने बताई, वास्तव में ये तीनों अलग-अलग नहीं हैं। सनातन धर्म के ही विग्रहस्वरूप हैं श्रीरामकृष्ण और उसी भारतवर्ष का मेरुदण्ड, नब्ज आध्यात्मिकता है, उसके भी विग्रहस्वरूप हैं श्रीरामकृष्ण। सनातन धर्म और आध्यात्मिकता इन दोनों के विग्रहस्वरूप हैं श्रीरामकृष्ण और श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द के भीतर से बोल रहे हैं। यह है शिकागो वक्तृता।

स्वामी विवेकानन्द का शिकागो का प्रथम व्याख्यान कितना सुन्दर है ! पच्चीस साल से मैं इसे पढ़ रहा हूँ। पहली बार पढ़ा, तो उतना समझ में नहीं आया। आज जब पढ़ता हूँ, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जब इस दृष्टिकोण से देखता हूँ, तो लगता है कितना अद्‌भुत है !

उन्नीसवीं शताब्दी की क्या दशा थी? पूरे भारत के लोगों में अपने धर्म के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति, अपनी आध्यात्मिकता के प्रति हीनभाव था, अपने देश के प्रति गर्वहीनता थी, ऐसी विचित्र दशा थी ! भारत के लोगों के मन में आत्मविश्वास नहीं था, आत्मश्रद्धा नहीं थी। ऐसा अन्धकार से भरा हुआ वातावरण था। ऐसे समय में एक संन्यासी वहाँ खड़े होकर अंग्रेजी में कहते है – ''मैं विश्व के सबसे प्राचीन संन्यासी सम्प्रदाय की ओर से आप सभी को धन्यवाद देता हूँ।'' उनमें गर्व का भाव है, आत्मविश्वास है। जिस हिन्दू धर्म को लेकर सारे विश्व में एक भ्रमात्मक चित्र खड़ा किया गया था, सारे विश्व के लोग, जो हिन्दू धर्म को हीन दृष्टि से देख रहे थे, उसी हिन्दू धर्म के अनुयायी होने के नाते विवेकानन्द यह कहते हैं। फिर कहते हैं – ''जिस धर्म को आप तुच्छ दिखा रहे हैं, वह सारे धर्मों की माता है।'' कौन कह सकता है ऐसा? ऐसा कहने के लिए उन्हें तैयार किया गया था। अगर श्रीरामकृष्ण का ऐसा प्रशिक्षण उसके पीछे नहीं होता, तो विवेकानन्द के मुख से ये शब्द नहीं आते कि मैं सभी धर्मों की माता की ओर से आपको धन्यवाद देता हूँ। वे आगे कहते हैं – "I think you on the name of the millions of hindus of all sects and class" – आगे की पंक्तियाँ देखिए, सुनने के बाद हमारे शरीर में कैसे विद्युत-तरंग दौड़ जाती है। वे दो चीजें कहते हैं – मुझे गर्व है कि 'मैं उस धर्म का अनुयायी हूँ,

जिसने सम्पूर्ण विश्व को सहिष्णुता और स्वीकार्य का पाठ सिखाया। फिर कहते हैं – ''हम सहिष्णुता पर ही विश्वास नहीं करते। हम स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक धर्म सत्य है।'' तो ये सब कहने के लिए स्वामी विवेकानन्द को तैयार किया गया था। अगर वे सनातन धर्म के एक अंग को लेकर रहते, तो क्या वे इस बात को कह पाते? इस बात को विश्व के सामने रखने के लिए श्रीरामकृष्ण ने सनातन धर्म के प्रत्येक पहलू से अवगत कराकर नरेन्द्र को तैयार किया था। यह मूल सिद्धान्त ऋग्वेद का प्रसिद्ध मन्त्र है – **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति** – सत्य एक ही है, जिसको लोग अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। वह एक ही तत्त्व है, जिस तक जाने के अलग-अलग रास्ते हैं। उसके आधार पर यह कहा जाता है कि हम मात्र सहिष्णु नहीं हैं, हम स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक मार्ग, प्रत्येक पंथ प्रत्येक धर्म सत्य है। उसके बाद स्वामीजी कहते हैं – हमें अपने देश पर गर्व है, जिसने पीड़ित और दुखी मानवता को शरण दिया है।

यदि आप शिकागो वक्तृता को ध्यान से पढ़ेंगे, तो वहाँ देखेंगे कि विवेकानन्द चार बार यह कहते है कि – I am proud to belong to this religion, I am proud to belong to this nation. I am proud to belong to this nation. I am proud to belong to this religion.' – एक बार धर्म की बात करते हैं, एक बार राष्ट्र की बात करते है। दुबारा राष्ट्र की बात करते हैं और धर्म की बात करते हैं। वहाँ धर्म महासभा में विवेकानन्द के अन्दर से कौन बोल रहा है? भारतमाता बोल रही है। सनातन धर्म बोल रहा है।

स्वामीजी ने कुएँ के मेढ़क का दृष्टान्त दिया था। कुएँ में मेढ़क के भीतर जो कूपमण्डूकता की वृत्ति होती है, वह वृत्ति आज के सभी धर्मों की समस्या है। यह बहुत प्रासंगिक है। सभी यह समझते हैं कि हम ही ठीक हैं, बाकी सब गलत हैं। अब हमारे सनातन हिन्दू धर्म की दृष्टि देखिए, भगवद्गीता से स्वामी विवेकानन्द उद्धरण देते हैं –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।

(गीता ४/११)

ये भगवद्गीता की बात है। उसी प्रकार वे शिवमहिम्नस्तोत्र की बात करते हैं। शिकागो में उन्होंने हिन्दू निबन्ध लिखकर पढ़ा था। उसमें उन्होंने हिन्दू सनातन धर्म की सर्वांगीण अद्भुत व्याख्या की थी ! हिन्दू धर्म के सभी पहलुओं की, सभी अंगों की, बहुत विस्तार से सर्वांग व्याख्या की है।

मुझे यह कहना था कि हम जब भी शिकागो धर्म महासभा की बात करते हैं, तो सामने विवेकानन्द का ही चेहरा आता है। जिस विवेकानन्द को हमलोग शिकागो धर्म महासभा के मंच पर देखते हैं, उसके पीछे श्रीरामकृष्ण देव की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। श्रीरामकृष्ण अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा विवेकानन्द को बनाते हैं, गढ़ते हैं। वे अपने हाथों से इस यन्त्र को तैयार करते हैं। इसीलिए सारा विश्व आज विवेकानन्द को याद करता है। ○○○

होली गीत

सिया संग खेलें होली रघुरइया

सन्त मैथिलीशरण 'भाईजी'

सिया संग खेलें होली रघुरइया – २
होली रघुरइया, अवध रघुरइया । सिया संग ...
भरत लखन पिचकारी भरत हैं,
रिपुसूदन पिचकारी भरत हैं,
मिलि मिलि कर गलबइँया ।। सिया संग ...
राजा दशरथ और मातु कौशल्या,
झूम झूम नाचें-नचावें रामलल्ला,
हरष हरष सब मातु मिलति हैं,
हनुमत नाच नचइया ।। सिया संग ...
शिवजी ने नारी को रूप धरो हैं,
चारु सखी हनुमत ने रूप धरो हैं,
डमरू बजावें शोर मचावें,
शिव-गौरा लोग लुगइया ।। सिया संग ...
गालन रंग अबीर लगावें,
ताली बजावें, धूम मचावें
झूम-झूम नाचें कमर हिलावें,
लखन कहें त त थैया,
नाचन लागे सब चारो भैया,
सिया संग खेलें होली रघुरइया ।।

रामराज्य का स्वरूप (२/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय
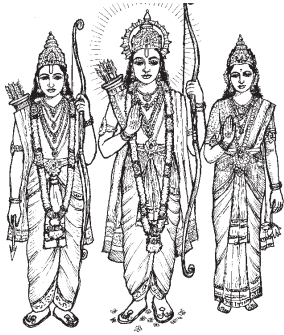
(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।
७/२१/०

श्रद्धेय स्वामीजी महाराज, समुपस्थित बन्धुओ, भक्तिमती देवियो, रामराज्य के सन्दर्भ में जो चर्चा कल प्रारम्भ की गई थी, आइए, आज पुन: उस पर विचार करने की चेष्टा करें। रामराज्य की विशेषताओं का वर्णन गोस्वामीजी ने बारह दोहों में किया है। उन बारह दोहों में जिन विशेषताओं का वर्णन है, वे सभी अद्‌भुत हैं, पर अभी जो दोहा आपके समक्ष पढ़ा गया है, रामराज्य के सन्दर्भ में वह दोहा मेरी दृष्टि में सर्वोत्कृष्ट है। व्यक्ति के सामने सबसे बड़ी समस्या सुख और दुख की है। व्यक्ति तो यही चाहता है कि वह कभी दुखी न हो और उसके साथ-साथ उसकी आकांक्षा है कि समस्त सुख हमें उपलब्ध हो। किन्तु इतना होते हुए भी वह सुख की अपेक्षा दुख का ही अधिक अनुभव करता है। इसलिए सबसे बड़ी समस्या दुख से मुक्ति की समस्या है और दुख से मुक्ति का समाधान रामराज्य में हुआ। गोस्वामीजी ने कहा कि दुख के जो चार कारण हैं, उन चारों कारणों का रामराज्य में अभाव हो गया और रामराज्य में प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक प्राणी केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी सुख में पूरी तरह निमग्न है और उसके लिये उन्होंने सूत्र दिया –

काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।

काल के द्वारा उत्पन्न होनेवाला दुख, कर्म के द्वारा मिलने वाला दुख, स्वभाव और गुण के द्वारा जीवन में आनेवाला दुख, रामराज्य में नहीं थे। अगर आप गहराई से विचार करके देखें, तो रामराज्य की स्थापना में जो प्रारम्भ में बाधा पड़ी, उससे आप भली भाँति परिचित हैं।

महाराज दशरथ के सन्दर्भ में कल एक बात कही गई थी, जिसका स्मरण स्वामीजी महाराज ने अभी आपको कराया था, महाराज दशरथ पूर्व जन्म में मनु थे, मनु से वे दशरथ बने। दशरथ बनने के पश्चात् भरत बन पाना उनके लिये सम्भव नहीं हो पाया। वस्तुत: इसमें निहित तात्पर्य बड़ा गम्भीर है।

रामचरित मानस में एक ओर संसार वन में भटकनेवाले एक व्यक्ति का वर्णन किया गया है, जो प्रारम्भ में बड़ा ही उत्कृष्ट चरित्रवाला था, धर्मात्मा और पुण्यात्मा था, पर महत्त्वाकांक्षा के पर्वत के समीप लोभ के पीछे अन्धाधुन्ध भागता हुआ अन्ततोगत्वा वह स्वयं ही ठगा जाता है और अगले जन्म में वह रावण बनता है, तो दूसरों को भी ठगने की ही चेष्टा करता है। जब प्रतापभानु ने रावण बनकर भगवान श्रीराम को ही ठगने का प्रयत्न किया, तो यह ठगवृत्ति की पराकाष्ठा है। व्यक्ति व्यक्ति को ठगने की चेष्टा तो करता ही है, पर एक ऐसी स्थिति है, जहाँ पर उसकी पराकाष्ठा है कि रावण श्रीराम को ही ठगने की चेष्टा करता है। ठगने के लिये वह जिस माध्यम का आश्रय लेता है, वह है स्वर्णमृग। मारीच को वह स्वर्णमृग बनने की प्रेरणा देता है और उस स्वर्ण मृग को लेकर जहाँ पर श्रीराम जनकनन्दिनी श्रीसीता और श्रीलक्ष्मण के साथ विराजमान थे, वहाँ जाता है। रावण के मन में यही वृत्ति क्यों आई? स्वर्णमृग के द्वारा ठगने की वृत्ति रावण के मन में आई, इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक संस्कार है, जो उसे पूर्वजन्मों से मिला हुआ है। रावण के जीवन में जो कुछ आप पाते हैं, अगर आप उसके मूल कारण पर विचार करें, तो रावण के जीवन में जितनी घटनाएँ होती हैं, उसके पूर्व जन्म में जो संस्कार हैं, उसकी प्रतिक्रिया के रूप में ही सामने आते हैं। जैसे रावण के विषय में प्रसिद्ध है कि वह ब्राह्मण और साधुओं का अत्यन्त विरोधी था, गोस्वामीजी लिखते हैं –

जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं।
नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं।।
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई।
देव बिप्र गुरु मान न कोई।
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना।
सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना।। १/१८२/७

इन पंक्तियों में रावण के क्रिया-कलाप का वर्णन किया गया। रावण के जीवन में ये जो वृत्तियाँ उत्पन्न हुईं, वे क्यों हुईं? इसके पीछे निहित कारण क्या है? इसके कारण पर यदि आप दृष्टि डालेंगे, तो रावण के पूर्व जन्म पर आपकी दृष्टि जायेगी। रावण ने पूर्व जन्म में जो कुछ किया था और कार्य को करने के पीछे जो भूल होती है, उस भूल को वह स्वीकार नहीं करता। उन सबको उसने नकार दिया। आप पढ़ते हैं कि प्रतापभानु बड़ा दानी था, यज्ञ करता था, ब्राह्मण ऋषियों को दान देता था, वह भगवान की भक्ति करता था, वह विविध प्रकार के सत्कर्म करता था, लेकिन इसकी प्रतिक्रिया रावण के रूप में क्या हुई? गोस्वामीजी ने लिखा उसमें दो सूत्र बड़े महत्त्व के हैं। कल जो बात प्रारम्भ की गई थी, उस पर आपका ध्यान मैं थोड़ा आकृष्ट करना चाहूँगा। शास्त्र कहता है कि व्यक्ति अपने कर्म का परिणाम भोगता है। इस सिद्धान्त में एक कमी है कि जब हमारे जीवन में कोई सुख होता है, सफलता मिलती है, तब उसे हम अपने कर्मों का परिणाम मानकर प्रसन्न होते हैं और जब हम दूसरों के जीवन में दुख देखते हैं, तो कभी-कभी हमारे मन में उसके प्रति सहानभूति नहीं होती, अपितु हम सब यह कहते हुए देखे जाते हैं कि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। इसका अर्थ हुआ कि हम यह मानकर चलते हैं कि व्यक्ति अपने जीवन में कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है और यदि वह कर्म का परिणाम भोग रहा है, तो ठीक है। इस सिद्धान्त का परिणाम यह होता है कि हमारे मन में जैसी सहानुभूति की वृत्ति उत्पन्न होनी चाहिए, वैसी उत्पन्न नहीं होती। इसे यदि दृष्टान्त के रूप में कहें, तो ऐसे कह सकते हैं कि व्यक्ति अपने कर्मों का परिणाम तो भोगता ही है, यह तो ठीक है, पर संसार के जितने व्यक्ति हैं, संसार के जितने प्राणी हैं, वे एक दूसरे से अलग नहीं हैं, एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और ऐसी परिस्थिति में हम यों कह सकते हैं कि व्यक्ति अपने कर्म का भी परिणाम भोगता है और दूसरे के कर्म का भी परिणाम भोगता है।

इसका अर्थ क्या है? जैसे किसी व्यक्ति ने चोरी की और चोरी करने पर उसको न्यायालय से सजा मिली, तो हम यह सोचकर सन्तुष्ट होते हैं कि उसने चोरी की थी, उसको दण्ड मिला। लेकिन ऐसा मानकर चलने का परिणाम यह होता है कि समस्या का वास्तविक समाधान नहीं होता है। समाधान कब होगा? चोरी और दण्ड, यह तो एक सामाजिक व्यवस्था है। पर गहराई से कोई व्यक्ति अगर चिन्तन करेगा, तो वह चिन्तन उसे उस स्थान पर पहुँचायेगा कि इस व्यक्ति ने चोरी की, उसे दण्ड मिला, यह तो ठीक है, पर उससे भी पहले प्रश्न यह है कि इस व्यक्ति ने चोरी क्यों की? अगर इतनी गहराई से दृष्टि डालें, तो समाज में प्रत्येक व्यक्ति के लिये, मानो ऐसा उसे प्रतीत होना चाहिए और होगा कि समाज में जितनी बुराईयाँ होती हैं, उसमें केवल एक व्यक्ति ही कारण नहीं होता है, हम-सब भी उस बुराई में कहीं-न-कहीं हेतु बनते हैं। यही चिन्तन रामराज्य का चिन्तन है। श्रीभरत के चिन्तन में आप यही सूत्र पायेंगे।

भगवान श्रीराम वन गये, तो उसके मूल में मन्थरा है, उसके मूल में कैकेयी है, यह तो ठीक ही है। कैकेयी और मन्थरा की आलोचना की जाती है, निन्दा की जाती है, वह आलोचना भी अपने स्थान पर उपयुक्त है।

अपने ननिहाल से जब श्रीभरत और शत्रुघ्न आए, तो मन्थरा के मन में बड़ी कल्पनाएँ थीं – अब यह राज्य भरत को मिलनेवाला है और उसका कारण तो मैं ही हूँ। अगर मैं प्रयत्न नहीं की होती, तो राम सिंहासन पर बैठ जाते। उसके मन में बड़ी कल्पना थी कि श्रीभरत इसके बदले में हमें न जाने कितना पुरस्कार देंगे ! परिणाम यह हुआ कि उस समय अयोध्या में शोक का वातावरण चारों ओर छाया हुआ था। महाराज दशरथ की मृत्यु हो जाने के कारण जब ननिहाल से लौटकर श्रीभरत आए, तो गोस्वामीजी उस समय का चित्र प्रस्तुत करते हैं –

तेहि अवसर कुबरी तहँ आई।
बसन बिभूषन बिबिध बनाई।। २/१६२/२

अपने आप को सुन्दर से सुन्दर वस्त्रों से सजाकर, आभूषण धारण करके मन्थरा आती है और मन्थरा के ऊपर जिस समय शत्रुघ्न की दृष्टि पड़ी, तो शत्रुघ्नजी को क्रोध आया और क्रोध में उन्होंने क्या किया?

हुमगि लात तकि कूबर मारा।
परि मुह भर महि करत पुकारा।।

कूबर टूटेउ फूट कपारू।
दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू।। २/१६२/४-५
लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।

मन्थरा के कूबड़ पर शत्रुघ्न ने प्रहार किया, वह मुँह के बल धरती पर गिर पड़ी। उसके मुख से रक्त बहने लगा और मन्थरा के मुँह से वह वाक्य निकल गया –

आह दइअ मैं काह नसावा।
करत नीक फलु अनइस पावा।। २/१६२/६

मैंने इतना अच्छा, इतना बड़ा कार्य किया, इतना कष्ट उठाकर भरत को राज्य दिलाने का प्रयत्न किया, लेकिन इसके बदले में आज मुझ पर प्रहार किया जा रहा है। यह सुनकर शत्रुघ्नजी का क्रोध और बढ़ जाता है। पहले उन्होंने कूबड़ पर प्रहार किया था, उसका कूबड़ टूट गया। मानो उसकी कुटिलता पर प्रहार था। उसकी कुटिलता ने ही अयोध्या में सारे अनर्थों की सृष्टि की। इसलिए शत्रुघ्नजी उसकी कुटिलता पर प्रहार करते हैं। पर मन्थरा का अगला वाक्य सुनते ही शत्रुघ्न को लगता है कि मन्थरा का कूबड़ ही नहीं, उसमें तो नख से लेकर शिखा तक सर्वत्र बुराई ही बुराई है। उसमें अच्छाई का लेश भी नहीं है –

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी।
लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।। २/१६२/७

उसे शत्रुघ्नजी के द्वारा दण्ड दिया गया। ठीक है, जिसने इतना बड़ा षड्यन्त्र किया, इतने बड़े मांगलिक कार्य में विघ्न उपस्थित किया, श्रीराम, श्रीसीताजी और लक्ष्मण को वनवास देने की प्रेरणा दी, उसे दण्ड मिले, यह सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से आवश्यक है, जिसे देखकर दूसरों के मन में भी सावधानी की वृत्ति उत्पन्न हो।

परन्तु उसका एक दूसरा पक्ष है। श्रीभरत भी मंथरा की आलोचना करते हैं, पर मन्थरा की आलोचना उन्होंने स्वयं अपने मुँह से कभी नहीं की। उन्होंने कैकेयीजी की आलोचना कठोर शब्दों में की, पर शत्रुघ्न जब मन्थरा को घसीटने लगे, तो श्रीभरतजी ने शत्रुघ्नजी का हाथ पकड़ करके उन्हें मन्थरा को दण्ड देने से रोका। क्यों? यदि अपराधी को दण्ड दिया जा रहा है और भरत स्वयं यह समझ रहे हैं कि मन्थरा अपराधी है, कैकेयी अपराधिनी हैं, तो मन्थरा को दण्ड देने से रोकने का क्या अर्थ है? भरत के द्वारा मन्थरा को दण्ड देने से यह जो रोका जाना है, यही रामराज्य का चिन्तन है।

रामराज्य का चिन्तन माने क्या? एक तात्पर्य तो यह हुआ कि यह जो अनर्थ हुआ, उसके मूल में मन्थरा है, पर श्रीभरत कहते हैं कि विचार करने की बात यह है कि इसमें अधिक दोष मन्थरा का है कि कैकेयी का है? मन्थरा दासी है, मन्थरा को उस प्रकार के संस्कार जीवन में नहीं मिले हैं। एक ऐसी मन:स्थिति में उसका जन्म हुआ है, जिसमें इस प्रकार की वृत्ति उसके जीवन में आना कोई अस्वाभाविक नहीं है। श्रीभरत का अभिप्राय है कि मन्थरा ने अगर कैकेयीजी को प्रभावित कर लिया और महारानी कैकेयी इतने निकट से श्रीराम को पालने के बाद भी, जान लेने के बाद भी, उनके स्नेह से परिचित होने के बाद भी, अयोध्यावासियों की उदारता से परिचित होने के बाद भी अगर वे मन्थरा की बातों से प्रभावित हो गईं, तो उसमें दोष मन्थरा की अपेक्षा महारानी कैकेयी का ही है और यहाँ पर दण्ड दिया जा रहा है मन्थरा को।

इसका क्या तात्पर्य हुआ? यह विसंगति कभी-कभी समाज में भी दिखाई देती है। कैसे? जब दण्ड दिया जाता है, तो बहुधा दण्ड अपराधी को तो दिया जाता है, पर अपराधियों में भी भेद हो जाता है। समर्थ अपराधी और असमर्थ अपराधी। समर्थ अपराधी अपराध करके भी दण्ड से बच जाने में सक्षम होते हैं। आज भी इसका अनुभव होता है। असमर्थ व्यक्ति छोटी भूल या छोटा अपराध करके अधिक दण्ड का पात्र बन जाता है। यह तो दण्ड व्यवस्था की बहुत बड़ी विसंगति है कि वह निर्बल को दण्ड दे और सबल को दण्ड न दे, तो लोगों के मन-मस्तिष्क में यह भावना उत्पन्न हो सकती है कि अपराध करने के साथ-साथ हमें सबल भी होना चाहिए, जिससे हम चाहे जितना बड़ा अपराध भी क्यों न करें, कोई हमें दण्डित न कर सके।

बल्कि इससे भी बढ़कर हनुमानजी ने रावण पर व्यंग्य किया। रावण ने आदेश दिया कि बन्दर को पकड़कर मेरे सामने लाओ। हनुमानजी को बाँधकर रावण की सभा में लाया गया। रावण हनुमानजी से पूछता है कि दूसरे की वाटिका का फल बिना अनुमति के खाना क्या चोरी नहीं है? क्या तुम्हें धर्मशास्त्र का इतना भी ज्ञान नहीं है? तुमने मुझसे बिना आज्ञा लिये मेरी वाटिका का फल खाया, चोरी की और इतना ही नहीं, तुम्हें चोरी करने से जिन लोगों ने रोका, तुमने उन पर प्रहार किया और उनके प्राण ले लिए। मैं

शेष भाग पृष्ठ ११७ पर

आर्य जाति का इतिहास

स्वामी विवेकानन्द

(७ मई, १८९६ को, लन्दन नगर में 'ज्ञानयोग' विषय पर स्वामीजी का एक व्याख्यान हुआ था। इसे उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे.जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था, जिसमें स्वामीजी ने आर्य जाति के इतिहास पर प्रकाश डाला है। परवर्ती काल में इसे Complete Works of Swami Vivekananda के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। इसका अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

(गतांक से आगे)

यहाँ एक अन्य विलक्षण बात यह है कि यह ईश्वर स्वयं ही इन विभिन्न देवताओं के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है। 'एक ही ईश्वर स्वयं को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करता है' – यह विचार वेदों के प्राचीनतम अंशों में पाया जाने वाला उनका एक अत्यन्त प्रारम्भिक विचार है। एक ऐसा भी समय आया था, जब वेदों में एक तरह का एकदेववादी विचार प्रविष्ट हुआ, परन्तु वह अतिशीघ्र परित्यक्त हो गया। अच्छा हुआ कि इसका परित्याग कर दिया गया और आगे चलकर सम्भवत: तुम लोग भी मेरे साथ इस बात पर सहमत हो जाओगे।

तो हमने देखा कि वैदिक साहित्यों के प्राचीनतम अंशों में ये विभिन्न देवता विद्यमान थे, जो अपने पीछे स्थित किसी अति महान् सत्ता की अभिव्यक्तियाँ थे, अत: उनमें से प्रत्येक के ऊपर बहुत से विशेषण जोड़े गये और अन्त में कहा गया, 'आप ही इस ब्रह्माण्ड के परमेश्वर हैं।' उसके बाद इस प्रकार की पंक्तियाँ आती हैं, ''मैं अग्नि के रूप में पूजित होने वाला ईश्वर हूँ।'' आदि आदि। 'वे एक हैं, और ऋषि लोग उनका विभिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं।' 'वे एकमात्र सत्ता हैं, ऋषिगण उन्हें विभिन्न नामों से पुकारते हैं।'

यह बात मैं तुम्हें विशेष रूप से स्मरण रखने को कहूँगा, क्योंकि – एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति – (परमात्मा एक है, ऋषिगण उसका विभिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं) – यही भारत में उद्भूत होने वाले समस्त विचारों का मूल सुर और 'Turning Point' था।

यही वह मूल सुर था, जो भारत में उत्पन्न होने वाले समस्त विचारों के लिए एक 'Turning Point' सिद्ध हुआ। समस्त हिन्दू दर्शनशास्त्र – चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक या एकदेववादी या द्वैतवादी या अद्वैतवादी – उनके मूल केन्द्र में यही भाव विद्यमान है। और अपनी हजारों साल की सभ्यता के दौरान हिन्दू जाति के लिए इस विचार से दूर जाना असम्भव बना रहा।

यह अंकुरित बीज (क्रमश:) एक विशाल वृक्ष बन गया; और यही कारण है कि हिन्दुओं के द्वारा कभी धार्मिक उत्पीड़न नहीं हुआ। इसके द्वारा उनकी इस उदारता की व्याख्या हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उन्होंने दुनिया के किसी भी भाग से आश्रय हेतु आनेवाले किसी भी धर्म के माननेवालों का स्वागत किया था। यही कारण है कि आज भी भारतीय शासकगण मुसलमानों की मस्जिद में प्रवेश करते हैं और इस्लामी अनुष्ठानों में भाग लेते हैं; वैसे, (कुछ) मुसलमानों ने मौका मिलते ही ऐसे अनेक 'काफीरों' को मार डाला था।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति – परमात्मा एक है, ऋषिगण उसका विभिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं।

आधुनिक काल में, धर्मों के विकास के सन्दर्भ में दो सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं – एक है 'जनजाति सिद्धान्त' और दूसरा है 'मृतात्म सिद्धान्त'। जनजातीय सिद्धान्त के अनुसार मानवजाति अपनी असभ्य अवस्था में अनेक छोटे-छोटे कबीलों में बँटी हुई थी। हर कबीले का एक अपना देवता था या कभी-कभी वही देवता अनेक रूपों में विभक्त हो जाता था, जैसे, कि इस नगर का देवता उस नगर में आया आदि, आदि – इस नगर का जेहोवा और अमुक पर्वत का जेहोवा। ये कबीले जब आपस में मिले, तो उनमें से कोई एक प्रबल सिद्ध हुआ।

यहूदी लोगों का उदाहरण लेते हैं। वे लोग बहुत से कबीलों में बँटे हुए थे और प्रत्येक कबीले का 'बाल' (Baal) या 'मोलोक' (Moloc) कहलानेवाला एक-एक देवता था। जिन्हें तुम्हारे बाइबिल के प्राचीन अंशों के अनुवाद में 'परमात्मा' कहा गया है। विभिन्न प्रान्तों तथा पर्वतों के विभिन्न मोलोक थे। फिर सन्दूक के भी मोलोक थे, जो सन्दूकों में रहते थे। उनमें से परवर्ती कबीला बलवान हो गया और उसने आस-पास के अन्य सभी कबीलों पर विजय प्राप्त कर ली। अत: वह मोलोक ही अन्य सभी कबीलों में महानतम

घोषित कर दिया गया। ''तुम ही मोलोक लोगों के जावा हो। तुम समस्त बाल तथा मोलोक लोगों के शासक हो।'' तथापि सन्दूक रह गया। इस प्रकार यह भाव जनजातीय देवताओं से प्राप्त हुआ था।

अब हम प्रेतात्मवाद के दूसरे सिद्धान्त पर आते हैं, जिसके अनुसार धर्म पितर-पूजा से आरम्भ होता है। यह पितर-पूजा मिस्री, बेबीलोनी, हिन्दू तथा ईसाई आदि अन्य अनेक जातियों में प्रचलित थी। धर्म का कोई भी ऐसा रूप विद्यमान नहीं है, जिसमें किसी-न-किसी रूप में पितर-पूजा का प्रचलन न रहा हो।

इसके पूर्व, वे लोग सोचते थे कि इस शरीर के अन्दर एक प्रतिरूप रहता है और जब इस शरीर की मृत्यु हो जाती है, तो यह प्रतिरूप बाहर निकल आता है और तब तक जीवित रहता है जब तक कि इस शरीर का अस्तित्व बना रहता है। इस प्रतिशरीर को बड़ी भूख और प्यास लग जाती है; वह खाना-पीना और इस संसार की अच्छी चीजों का भोग करना चाहता है। अत: वह अपने भोजन आदि को लेने के लिए आता है और यदि वह उसे नहीं मिला तो वह अपने बच्चों तक को हानि पहुँचा सकता है। अत: जब तक शरीर संरक्षित रहता है, तब तक प्रतिरूप भी जीवित रहता है। अत: हम देखते हैं कि पहला प्रयास शरीर को सुरक्षित रखने का किया गया, उसका 'ममी' बनाया गया, ताकि वह शरीर चिरकाल तक बचा रहे।

बेबीलोनवासियों में इसी तरह की प्रेतपूजा प्रचलित थी। बाद में ज्यों-ज्यों राष्ट्रों की प्रगति हुई, त्यों-त्यों इसके क्रूर रूप लुप्त हो गये और बेहतर रूप बने रहे। स्वर्ग नामक स्थान को भी थोड़ी मान्यता दी गयी और वे लोग उसके लिए यहाँ भोजन रख देते ताकि वह उसके प्रतिरूप को वहाँ प्राप्त हो जाय। अब भी श्रद्धालु हिन्दू लोग साल में कम-से-कम एक दिन अपने पितरों के लिए पिण्डदान करना आवश्यक समझते हैं। जिस दिन वे लोग अपनी इस परम्परा को त्याग देंगे, वह उनके पितरों के लिए शोक का दिन होगा। इस प्रकार तुमने देखा कि पितर-पूजा भी धर्म का एक कारण है। आधुनिक काल के कुछ दार्शनिकों का यह सिद्धान्त है कि यही सभी धर्मों का मूल उद्‌गम रहा है। कुछ अन्य दार्शनिकों का यह सिद्धान्त है कि जनजातीय देवताओं का एकदेववाद में विलय की प्रक्रिया ही सभी धर्मों का मूल उद्‌गम है।

बाइबिल के पुराने नियमों में वर्णित यहूदियों के प्रसंग में 'आत्मा' शब्द का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। केवल ताल्मुड में ही इसका उल्लेख मिलता है। उन लोगों ने सिकन्दरिया लोगों से ही इसकी धारणा पायी और सिकन्दरिया के लोगों ने इसे हिन्दुओं से प्राप्त किया था – इसी प्रकार बाद में ताल्मुड में आत्मा के पुनर्जन्म का विचार ग्रहण किया था, परन्तु प्राचीन यहूदियों में परमात्मा के विषय में बड़े भव्य विचार थे। यहूदियों का ईश्वर एक सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा परम करुणामय परमेश्वर के रूप में विकसित हुआ और यह सब कुछ उन्हें हिन्दुओं से प्राप्त हुआ था, न कि आत्मा की धारणा के द्वारा। अत: प्रेतात्मवाद की इसमें कोई भूमिका नहीं हो सकती, क्योंकि जो व्यक्ति मृत्यु के बाद की किसी जीवात्मा में विश्वास नहीं कर सकता था, उसका प्रेतात्मवाद से भला क्या सम्बन्ध हो सकता था?

दूसरी ओर, वेदों के प्राचीनतम अंश में प्रेतात्मवाद के विषय में यदि कुछ है भी, तो नाम मात्र को ही है। (वैदिक) देवताओं का (इस प्रेतात्मवाद से) कोई सम्बन्ध नहीं था – यद्यपि परवर्ती काल में वे उससे समबद्ध हो गये; और अपने पीछे विद्यमान उस सत्ता की वे अभिव्यक्तियाँ मात्र हैं – यह विचार (वेदों के) प्राचीनतम अंशों में मिलता है।

एक अन्य विचार यह है कि शरीर की मृत्यु हो जाने के बाद आत्मा, जो कि अमर है, परमसुख की अवस्था में रहती है। चाहे जर्मन भाषा में हो या ग्रीक में, सर्वाधिक प्राचीन हमारे साहित्य में आत्मा विषयक यह विचार विद्यमान है।

'आत्मा' की यह धारणा हिन्दुओं से ही आयी है। हिन्दुओं तथा यहूदियों, इन दो जातियों ने ही संसार को उसका सारा धर्म प्रदान किया है। परन्तु, आत्मा की धारणा सर्वप्रथम हिन्दुओं में ही प्रचलित थी और जिनसे यह अन्य जातियों को प्राप्त हुई।

यह बड़ी विचित्र बात है कि सैमेटिक जातियाँ और मिस्र के लोग मृत देह को सुरक्षित रखने का प्रयास करते हैं, जबकि आर्य लोग उसे नष्ट कर देने का प्रयास करते हैं। तुम लोगों के ईसाई बनने के पूर्व के तुम्हारे पूर्वज – यूनानी, जर्मन तथा ग्रीक लोग अपने मृतकों को जला दिया करते थे। जब चार्लेमेन ने अपनी तलवार के बल पर तुम लोगों को ईसाई बनाया और तुम लोगों के मना करने पर सैकड़ों लोगों का सिर काट डाला और बहुत से लोग पानी में कूद पड़े, तभी से यहाँ दफन करने की प्रथा आयी। इससे तुम्हें

मृतकों को जलाने का दार्शनिक महत्त्व तत्काल समझ में आ जाता है। मृतकों को दफन करना तभी हो सकता है, जब आत्मा के विषय में कोई धारणा न हो और शरीर ही सब कुछ हो। परवर्ती काल में, बहुत हुआ तो, (उन लोगों में) यह धारणा आयी कि अनेक वर्षों के बाद इसी शरीर को एक नया जीवन प्राप्त होगा, ये 'मम्मियाँ' पुनः बाहर निकल कर सड़कों पर चलने लगेंगी।

परन्तु आर्यों में प्रारम्भ से ही यह धारणा विद्यमान थी कि आत्मा शरीर नही है और वह आगे भी जीवित रहेगी। ऋग्वेद के कुछ प्राचीन सूक्त हैं, जो शरीरों के दाह के समय कहते हैं, (हे अग्नि,) इन्हें कोमलतापूर्वक ग्रहण कीजिये, पवित्र कीजिये, एक दीप्तिमान शरीर दीजिये और इन्हें उस लोक में ले जाइये, जहाँ हमारे पितर लोग निवास करते हैं, जहाँ कोई दु:ख-शोक नहीं है और जहाँ निरन्तर आनन्द बना रहता है।

यद्यपि आधुनिक काल में, भारतवर्ष में क्रमशः धर्म के अनेक बीभत्स तथा क्रूर रूप प्रविष्ट हो गये हैं, तथापि यह बड़ी विलक्षण बात दुनियाँ की अन्य जातियों से आर्य जाति को पृथक करती है; और वह यह कि उनके हिन्दू धर्म में इन्द्र को (परमतत्त्व के पर्याय के रूप में) स्वीकार किया गया है। वेदों में वर्णित तीन-चौथाई देवगाथाएँ यूनानी मिथकों में यथावत् प्राप्त होती हैं, भेद केवल इतना ही है कि इस नये धर्म में प्राचीन देवताओं ने सन्तों रूप धारण कर लिया है। परन्तु वस्तुतः वे वैदिक संहिताओं के देवता थे।

इसकी एक अन्य उल्लेखनीय विलक्षणता यह है कि यह वैदिक धर्म आनन्द तथा आह्लाद से परिपूर्ण है और यहाँ तक कि इसमें यदा-कदा प्रायः अट्टहास की झलक भी मिल जाती है। इसमें निराशावाद के लिए कोई स्थान नहीं है। पृथ्वी सुन्दर है, देवलोक सुन्दर है और जीवात्मा अमर है। मृत्यु के बाद भी उसे एक अधिक सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है, जिसमें इस शरीर के समान कोई दोष नहीं होते और वे लोग सदा के लिए स्वर्ग में जाकर देवताओं के साथ आनन्द मनाते हैं।

दूसरी ओर सैमेटिक जातियों में धर्म की शुरुआत आतंक से ही होती है। एक व्यक्ति अपने छोटे-से घर में भय से आक्रान्त दुबक कर बैठा है। प्रेतात्माएँ उसके घर को चारों ओर से घेरे हुए हैं। यहूदी परिवारों के इन पितरों को यदि खूनी कुर्बानियाँ नहीं दी गयीं, तो वे, जो भी मिला, उस पर टूट पड़ेंगे और चीरफाड़ कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। यहाँ तक कि जब यह विचार और भी परिपक्व हुआ – "तुम्हीं यहूदियों के इलोहिम हो और तुम्हीं बेबिलोनियों के इलोहिम हो।" तब भी कुर्बानी का यह विचार बना रहा।

भारत में (वेदों के) इस प्रारम्भिक अंश में बलिदान की धारणा नहीं है। परन्तु परवर्ती ब्राह्मण अंश में हम देखते हैं कि भारतवर्ष में भी यही विचार प्रकट हुआ। यहाँ मूलतः बलिदान से तात्पर्य केवल (पितरों या देवताओं) को भोजन अर्पित करने तक सीमित था। परन्तु क्रमशः विस्तार होते-होते वह परमात्मा के लिए यज्ञ में परिवर्तित हो गया। इसके बाद दार्शनिकों ने इसके आस-पास तर्क का जाल फैला कर इसे और भी अधिक रहस्यमय बना दिया। इसके बाद पशुओं की बलि का प्रचलन होने लगा। कहीं यह भी पढ़ने को मिलता है – तीन सौ बैलों को भूना गया या देवतागण बलिदानों की सुगन्ध लेकर बड़े हर्षित हो रहे हैं। इसके बाद अनेकों प्रकार के रहस्यमय सिद्धान्त अस्तित्व में आये, यथा – बलि को एक त्रिभुज या चतुर्भुज या त्रिभुज के भीतर एक चतुर्भज या पंचभुज की आकृति बनाकर प्रस्तुत किया जाय, आदि आदि। परन्तु इससे रेखागणित के विकास के रूप में एक महान लाभ हुआ। जब उन्हें ये सब आकृतियाँ बनानी पड़ती थीं, तो इस विषय में सुनिश्चित नियम थे कि उसके लिए कितनी ईंटों का प्रयोग किया जायेगा, उन्हें कैसे सजाया जायेगा और वे कितनी बड़ी होनी चाहिये – इससे स्वाभाविक रूप से ही रेखागणित का जन्म हुआ। मिश्रवासियों ने भी नहरों के द्वारा नील नदी का पानी अपने खेतों में पहुँचाने के लिए रेखागणित का विकास किया, जबकि हिन्दुओं ने अपनी यज्ञ वेदियाँ बनाने के लिए उसका विकास किया था।

हिन्दुओं के बलिदान तथा यहूदियों की कुर्बानी के बीच और भी एक विशेष अन्तर था। बलिदान का वास्तविक अर्थ 'पूजा' है। यह आहुतियों के द्वारा पूजा की एक विधि है। प्रारम्भ में इस विधि से देवताओं या उच्चतर प्राणियों को भोजन अर्पित किया जाता था। हम लोगों के समान ही उन्हें भी स्थूल भोजन दिया जाता था। परवर्ती काल में दर्शनशास्त्र ने प्रवेश किया और इस विचार का प्रादुर्भाव हुआ कि उच्चतर प्राणी होने के कारण वे लोग हमारे समान स्थूल भोजन नहीं कर सकते। उनके शरीर सूक्ष्म तत्त्वों से बने होते हैं। हमारे शरीर दीवार से होकर नहीं गुजर सकते, परन्तु उनके शरीरों के लिए स्थूल पदार्थ जरा भी बाधक

नहीं हैं। अत: यह आशा करना उचित नहीं कि वे लोग भी हमारे ही समान स्थूल रूप से भोजन ग्रहण कर सकेंगे।...

(इस व्याख्यान के बाकी अंश की पाण्डुलिपि अत्यन्त क्षतिग्रस्त अवस्था में प्राप्त हुई थी। उसमें से जितना कुछ पढ़ा जा सका है, उसका अनुवाद निम्नलिखित है।)

"हे इन्द्र, मैं आपको यह आहुति प्रदान करता हूँ। हे अग्नि, मैं आपको यह आहुति प्रदान करता हूँ।" संस्कृत में उच्चरित इन शब्दों में एक रहस्यमय शक्ति निहित है। जब कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट मानसिक अवस्था में इन शब्दों का उच्चारण करता है, तो इससे कुछ विशिष्ट मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ आरम्भ होती हैं और ये प्रक्रियाएँ एक विशेष फल उत्पन्न करती हैं। यह विचारों का विकार है।

इसे और भी स्पष्ट रूप में कहा जाय – मान लो कि एक व्यक्ति निस्सन्तान है और एक पुत्र पाने का इच्छुक है। उसने इन्द्र की पूजा की और यदि उसे एक पुत्र हुआ, तो वह मानेगा कि उसे इन्द्र ने वह पुत्र दिया। बाद में उन लोगों ने कहा कि इन्द्र का तो कोई अस्तित्व ही नही है। तो फिर किसने वह पुत्र दिया? यह पूरी प्रक्रिया 'कारण और कार्य' का विषय है।...

(परन्तु यहूदी लोगों का भाव अलग था) उन लोगों ने कहा कि हम लोग देवताओं को भोजन नहीं दे रहे हैं बल्कि अपने पापों को एक अन्य प्राणी के सिर पर सौंप रहे हैं। "मेरे पाप इस बकरे के सिर पर चले जाएँ और अगर यह बकरा कुर्बान हो जाय तो मेरे पाप मिट जाएँगे।" यहूदियों की कुर्बानी का यह भाव भारत में कभी प्रविष्ट नहीं हुआ; और सम्भवत: इसने हमें अनेक पीड़ाओं तथा अनेक समस्याओं से बचा लिया।

स्वार्थपरता मनुष्य का स्वभाव है और अधिकांश नर-नारी दुर्बल हुआ करते हैं; और इस स्थानापन्न कुर्बानी की शिक्षा हमें क्रमश: और भी अधिक दुर्बल बनाती है। प्रत्येक बालक को बताया जाता है कि तुम निकम्मे हो और अन्तत: वह बेचारा सम्मोहित होकर निकम्मा ही बन जाता है। वह हमेशा किसी-न-किसी का सहारा ढूँढ़ता रहता है और कभी स्वावलम्बी होने की नहीं सोचता । ○○○

पृष्ठ ११३ का शेष भाग

पूछता हूँ, तुम्हीं बताओ कि क्या तुम्हारा यह कार्य उचित है?

अब इसमें व्यंग्य क्या है? यह प्रश्न किसके द्वारा किया जा रहा है? रावण के द्वारा। किसलिए? क्योंकि उन्होंने वाटिका का फल खा लिया। हनुमानजी को चोर बताया जा रहा है? रावण ने कहा कि दूसरे की वाटिका का फल खा लेना चोरी है। इसका हनुमानजी ने बड़ा विचित्र ढंग से उत्तर दिया। उनका वह उत्तर पढ़कर प्रारम्भ में कोई युक्तिसंगत नहीं लगता। हनुमानजी ने पहला वाक्य यह कहा –

खाएउँ फल प्रभु लागी भूखा।

मुझे भूख लगी थी, मैंने फल खा लिया। पढ़कर ऐसा लगता है कि यह तो कोई उत्तर नहीं हुआ। पर हनुमानजी के उत्तर पर आप गहराई से दृष्टि डालिए। रावण ने पूछा कि तुमने फल खाने के बाद मेरी वाटिका को उजाड़ क्यों दिया? उससे भी विचित्र उत्तर हनुमानजी ने दिया –

कपि सुभाव तें तोरेऊँ रूखा।। ५/२१/३

मैं बन्दर हूँ और बन्दरों का स्वभाव तो तोड़-फोड़ करने का होता ही है, इसलिए मैंने अपने स्वभाव के कारण वाटिका को उजाड़ दिया। तुमने रखवालों को मार क्यों दिया? बोले –

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।

तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे।। ५/२१/५

जिन्होंने मुझे मारा, बदले में मैंने उन्हें मारा और हनुमानजी ने रावण पर एक आरोप और लगा दिया। यहाँ तक तो सारी बातें एक जैसी है। भूख लगी थी, मैंने फल खाया, अपने बन्दर स्वभाव के कारण मैंने वाटिका उजाड़ दी, जिसने मुझे मारा, उसको मैंने मारा। उसके बाद अब मैं समझ नहीं पाता कि 'तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे', तुम्हारे पुत्र ने मुझे बाँध क्यों लिया? हनुमानजी ने कहा कि जो प्रश्न तुमने पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया। मुझे बाँधकर लाने का परिणाम देना अभी शेष है। लंका-दहन जो है, वह बाँधकर ले आने का ही परिणाम है। **(क्रमशः)**

अनाथों की माँ : सिन्धुताई सपकाल

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

अभिमान साठे की पुत्री सिन्धुताई का जन्म १४ नवम्बर, १९४८ में वर्धा (महाराष्ट्र) जिले के पिंपरी मेघे नामक गाँव में हुआ। बेटी और बेटा में भेदभाव की मानसिकता रखने के कारण घर में उन्हें पसन्द नहीं किया जाता था। उन्हें घर में 'चिंधी' (अर्थात् फटे हुए कपड़े का टुकड़ा) के नाम से पुकारा जाता था। क्योंकि वे बेटा नहीं थीं, इसलिए उनकी माँ पाठशाला भेजने के विरुद्ध थीं। परन्तु उनके पिता सिन्धु को पढ़ाना चाहते थे और उनकी माँ के विरुद्ध होकर वे सिन्धुताई को पशुओं को चराने के बहाने पाठशाला भेजते। जब वे चौथी कक्षा उत्तीर्ण कर चुकी थीं, तब बाल विवाह, माँ के विरोध एवं घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उन पर घर की जिम्मेदारियाँ आईं और उनकी शिक्षा में बाधा आने लगी, जिसके कारण उन्हें पाठशाला छोड़नी पड़ी। सिन्धु के जीवन में कठिनाइयाँ और बाधाएँ थमने का नाम ही नहीं ले रही थीं। मात्र १० वर्ष की आयु में उनका विवाह श्रीहरी सपकाल नामक ३० वर्ष के व्यक्ति से हुआ। एक बार गाँववालों को उनके मुखिया ने मजदूरी के रुपये नहीं दिये, जिसकी शिकायत सिन्धुताई ने जिलाधीश से की।

जब सिन्धुताई ९ महीने की गर्भवती थी, तो गाँव के मुखिया ने उसके पति को उन्हें घर से निकालने के लिए उकसाया। जिस रात उनको घर से बाहर निकाला गया, उसी रात उन्होंने गोशाला में एक पुत्री को जन्म दिया। जब वे अपनी माँ के घर आश्रय लेने के लिए गईं, तब उनकी माँ ने उन्हें घर में रहने के लिए मना कर दिया। इसके बाद सिन्धुताई अपनी बेटी के साथ रेलवे स्टेशन के परिसर में रहने लगीं। वे दिन में भीख माँगती और रात को स्वयं तथा बेटी की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए श्मशान घाट पर रहतीं, जिसके कारण लोग उन्हें भूत कहते। उन्होंने जीवन से परेशान होकर आत्महत्या करने का भी प्रयास किया। इस प्रकार के संघर्षमय जीवनकाल में उन्हें लगने लगा कि हमारे देश में कितने सारे ऐसे अनाथ बच्चे हैं, जिनको आवश्यकता है एक माँ की। उसके बाद उन्होंने यह दृढ़ संकल्प किया कि आज के बाद जो कोई भी अनाथ बच्चा उनके पास आएगा, वे उनकी माँ बनेंगी। उन्होंने अपनी बच्ची को भी महाराष्ट्र के पुणे में 'श्री दगडुशेठ हलवाई ट्रस्ट' को दे दिया, जिससे वे सारे अनाथों की माँ बन पाएँ। इस प्रकार उन्होंने अपना सारा जीवन अनाथों के लिए समर्पित कर दिया और अब उन्हें 'माई' (माँ) के नाम से पुकारा जाता है। सिन्धुताई ने १०५० अनाथ बच्चों को गोद लिया है। उनकी बेटी जिसे उन्होंने श्री दगडुशेठ हलवाई ट्रस्ट को दे दिया था, आज एक वकील है और बहुत से गोद लिए हुए बच्चे वकील, डॉक्टर, इन्जीनियर हैं और बहुत सारे स्वयं के अनाथालय भी चलाते हैं।

सिन्धुताई सपकाल

८० वर्ष की आयु में उनके पति श्रीहरी उनके साथ रहने के लिए आए। सिन्धुताई ने उन्हें अपने पति के रूप में नहीं, बल्कि एक बेटे के रूप में स्वीकार किया। उनका कहना है कि वह उनका सबसे बड़ा बेटा है। सिन्धुताई कविताएँ लिखती हैं और उनके माध्यम से जीवन के सार को व्यक्त करती हैं। वे अपनी माँ को धन्यवाद ज्ञापित करती हैं, क्योंकि उनका कहना है कि यदि वे उसे घर में रहने देतीं, तो आज वे इतने अनाथों की माँ नहीं बन पातीं।

सिन्धुताई सपकाल ने ८४ गाँवों के पुनर्वास के लिए

शेष भाग पृष्ठ १२० पर

स्वामी शान्तानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

सम्भवत: मैंने १९५४-५५ ई. में स्वामी शान्तानन्द जी (१८८४-१९७४) का उद्बोधन आश्रम में दर्शन किया था। सुना था कि वे एक उच्चस्तर के संन्यासी और श्रीमाँ के एक प्रिय शिष्य थे। मेरे प्रणाम करने जाने पर उन्होंने कहा, ''दूर से ही प्रणाम करो।'' मैं थोड़ा-सा हतप्रभ हो गया। तदुपरान्त ज्ञात हुआ कि महाराज को टी.बी. हुआ था। अभी थोड़ा-सा स्वस्थ होकर उद्बोधन में रह रहे हैं। मेरे कल्याण हेतु उन्होंने अपने अति-समीप आने से मुझे मना किया था। महाराज उस समय हिचकी से बहुत कष्ट पा रहे थे और यह अनेक दिनों से चल रहा था।

महाराज को जिस समय काशी में टी.बी. का पता चला (१९४७-४८) उस समय श्रीधरानन्दजी उनके सेवक थे। महाराज को नहीं बताया गया था कि उनको टी.बी. हुआ है। तदनन्तर स्वामी विरजानन्द जी की व्यवस्था से उनको शिमला टी.बी. हॉस्पिटल में भेजा गया। उस समय उनको ज्ञात हुआ कि उनको टी.बी. हुआ है। २३ मई, २००५ ई. को श्रीधरानन्दजी ने इस अद्भुत घटना को बताया था, जिसे मैंने अपनी डायरी में लिखकर उनसे अनुमोदन करवा लिया था।

शान्तानन्दजी ने स्वयं अपने मुख से 'श्रीमाँ का आदेश पाने की प्रक्रिया' के सम्बन्ध में बताया – श्रीमाँ ने शान्तानन्दजी से कहा था, ''जीवन में यदि कोई संकट आता है, तो मेरा स्मरण करना। स्वयं को कई दिनों तक दूसरे व्यक्तियों से दूर रखकर बहुत जप-ध्यान तथा प्रार्थना करना और मुझसे पूछना कि 'माँ, क्या करूँ?' उन दिनों अल्प भोजन करना, अपने शरीर-मन को पवित्र रखना, जहाँ तक सम्भव हो, दूसरों से वार्तालाप नहीं करना। दूसरों को मालूम होने नहीं देना कि तुम क्या कर रहे हो। ऐकान्तिक भाव से प्रार्थना और साधना करते जाना। कभी भी धैर्य नहीं खोना। मेरा आदेश या मेरा उत्तर पाने में यदि विलम्ब होता है, तो धैर्य नहीं छोड़ना। यदि अभी भी कोई उत्तर नहीं मिल रहा है, तो यह जानना कि तुम्हारा मन अभी भी उस स्तर पर नहीं आया है कि तुम मेरा आदेश पाओ। भक्ति और विश्वास से व्याकुल होकर पुकारने पर मुझसे उत्तर पाओगे।''

स्वामी शान्तानन्द जी महाराज

तीन दिन पश्चात् शान्तानन्दजी को श्रीमाँ का दर्शन तथा आदेश प्राप्त हुआ था। उन्होंने श्रीमाँ से कहा था, ''माँ, यदि टी.बी. से मेरी मृत्यु होती है, तो मुझे कोई दुख नहीं। किन्तु यह लड़का (सलिल, परवर्तीकाल में स्वामी श्रीधरानन्द) मेरा सेवा किया है, इसको टी.बी. न हो, यही मेरी प्रार्थना है।'' श्रीमाँ ने सहमति प्रकट की थी। कालान्तर में शान्तानन्दजी ने इस घटना को श्रीधरानन्दजी को भी बताया था।

स्वामी शान्तानन्द जी बेलूड़ मठ में स्वामीजी मन्दिर के सामने प्रेमानन्द-भवन में निवास करते थे और सुशील महाराज उनकी सेवा करते थे। मैंने कई बार उन्हें प्रणाम किया है। अधिकांश समय वे मौन रहते थे। संन्यासियों के मुँह से सुना हूँ, हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) ने कहा था, ''खगेन (शान्तानन्दजी) ने इस जीवन में शान्ति प्राप्त की है।'' मैंने एक दिन माधवानन्दजी से पूछा था, ''महाराज, जप-ध्यान के समय मन इतना चंचल क्यों हो जाता हैं?'' उन्होंने मुझसे कहा, ''तुम खगेन महाराज को देखो। वे बैठने (जप-ध्यान के लिए) के साथ ही अन्तर में गम्भीर रूप से डूब जाते हैं। उनको मन के साथ युद्ध नहीं करना होता है। तुम अपने गुरु के उपदेशानुसार जप-ध्यान करो, उसी से क्रमश: तुम्हारा मन शान्त होगा।''

मैं अमेरिका आने के पूर्व कई दिन बेलूड़ मठ में था। एक दिन शान्तानन्दजी महाराज का आशीर्वाद लेने गया।
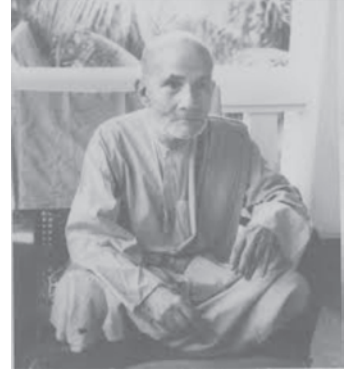
सेवक सुशील महाराज ने शान्तानन्दजी से कहा, ''महाराज, चेतनानन्द अमेरिका जा रहा है। उसको आशीर्वाद दीजिए।'' महाराज यह सुनकर मौन ही रहे। मैं फर्श पर ही उनकी कुर्सी के सामने बैठा रहा। देखा, उनके ओंठ हिल रहे हैं। कभी आँखें खोल रहे हैं, तो कभी आँखें बन्द कर रहे हैं। प्राय: १५ मिनट के उपरान्त महाराज ने मुझसे कहा, ''जप करो।'' तदुपरान्त मेरी ओर देखकर पुन: मौन हो गये। मैं और पन्द्रह मिनट बैठा रहा। अन्त में, सुशील महाराज ने मुझसे कहा, ''अब, तुम जाओ। महाराज अब और कुछ नहीं कहेंगे।''

अभी भी उन वरिष्ठ संन्यासी की वाणी 'जप करो' मेरे कानों में गूँजती है। ये सब संन्यासी मौन होकर भी बहुत बातें कह देते हैं। मौन ही उनकी शिक्षा है। उपशान्तोऽहम् आत्मा। महाराज के साथ बहुत समय तक मेरी कोई बातें नहीं हुईं, इसके लिए मेरे मन में कोई दुख नहीं है। उनके पास बैठने से ही मन शान्त हो जाता था। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ११८ का शेष भाग

संघर्ष किया। जब तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी टाइगर प्रोजेक्ट के उद्घाटन के लिए आईं, तब सिन्धुताई ने उन्हें एक आदिवासी के फोटो दिखाए, जो जंगली भालू के हमले के कारण अपनी आँखें खो चुका था। उन्होंने प्रधानमन्त्री से कहा, 'वन विभाग जंगली जानवरों द्वारा गाय या अन्य पशुओं को मारे जाने पर मुआवजा देता है', तो फिर एक मनुष्य को क्यों नहीं? प्रधानमन्त्री ने तुरन्त ही मुआवजा देने का आदेश दिया।

सिन्धुताई ने अनाथों के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना की। उनमें से प्रमुख हैं – बाल निकेतन हडपसर, पुणे; माई आश्रम चिखालदरा, अमरावती; अभिमान बाल भवन, वर्धा; ममता बाल सदन, सासवड; सप्तसिन्धु महिला आधार बालसंगोपन व शिक्षण संस्थान तथा मदर ग्लोबल फाउंडेशन संस्था, पुणे।

सिन्धुताई को अभी तक २७३ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। उनमें प्रमुख पुरस्कार हैं – भारत के राष्ट्रपति द्वारा नारी शक्ति पुरस्कार (२०१७), मदर टेरेसा पुरस्कार (२०१३), महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रदत्त अहिल्याबाई होलकर पुरस्कार (२०१०), 'आयकौनिक मदर', दत्तक माता पुरस्कार, सह्याद्री हिरकणी पुरस्कार, रिलायन्स द्वारा रियल हिरोज पुरस्कार, शिवलीला महिला गौरव पुरस्कार इत्यादि।

सिन्धुताई के जीवन के संघर्ष तथा उनके द्वारा सामाजिक स्तर पर किये गए नि:स्वार्थ अथक प्रयासों एवं सराहनीय कार्यों से हमें प्रेरणा लेनी चाहिए। सिन्धुताई सपकाल भारत ही नहीं, पूरे विश्व के लिए नारी शक्ति के संघर्ष की एक ज्वलन्त मिसाल हैं। ○○○

सर्वश्रेष्ठ ठाकुर मेरे

अक्षय कुमार सेन

हिन्दी काव्यानुवाद – रामकुमार गौड़, वाराणसी

रामकृष्ण का नाम है अनुपम अनुभवगम्य स्वरूप सदा।
महिमा अमित उसे ही मालुम जो नामामृत लीन सदा।।
एक व्यक्ति यदि गुड़ खाए, तो अन्य न पाए वह आनन्द।
सन्देही विश्वासहीन को मिल न सके ईश्वर-आनन्द।।
कोटि-कोटि जन्मों के अर्जित कटते पाप एक ही बार।
यदि मन-वचन-कर्म से कर लो, प्रभु का नामगान सुखसार।।
परम दयामय ठाकुर ने निज श्रीमुख से कही है बात।
उनके नाम में ममता जिसकी उसके वे रक्षक दिन-रात।।
भावावेश हृदय आनन्दित दृढ़ विश्वास मिले गुणगान।
नाम पतितपावन है उनका, प्रभु का नाम सर्वसुखखान।।
पाप नाश तो होता ही है सेवा भक्ति मिले अन्तर।
जो प्रभु रामकृष्ण-पद-चिन्तन करता है बनकर पवित्र नर।।
जप-तप, योग-यज्ञ करके भी, जिसे न पाते योगी जन।
श्रीठाकुर के नामामृत में, डूब मिले वह जीवन-धन।।
क्या करते हैं लोग जगत के, करो न कुछ चिन्ता हे मन।
रामकृष्ण का नाम-गान कर, ले लो अपना जीवन-धन।।
दोनों हाथ उठाकर गाओ, सरल हृदय से नित हरिनाम।
लोक-लाज संकोच बहाना, छोड़ भजो प्रभुवर सुखधाम।।
सकल जगत के सारतत्त्व जो, वे ही इष्टदेव तेरे।
श्रद्धा भक्ति-भाव से बोलो, सर्वश्रेष्ठ ठाकुर मेरे।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०१)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२२-०३-१९६४

प्रश्न – रा... के साथ मैं जो बातचीत आदि करता हूँ, क्या वह अच्छा है? अथवा बातचीत आदि छोड़ दूँ?

महाराज – बहुत अच्छा है, किन्तु सावधान न रहने पर न करना ही अच्छा है। किन्तु उसे दबाने का प्रयास या बातें सुनना न चाहने पर जिससे क्रोध न आए, उधर ध्यान रखना। वह बुद्धिमान, जिज्ञासु है, उसके साथ बातें करने से तुम्हारी भी धारणा सुस्पष्ट होगी, तुममें बुद्धियोग उत्पन्न होगा। मौन रहने से भयंकर प्रतिक्रिया हो सकती है, जैसे आ... महाराज कैसे अस्वस्थ हो गए ! इतने दिनों में ब्रह्मसूत्र पाठ आरम्भ किया है। सौभाग्यवश प्रभु महाराज (स्वामी वीरेश्वरानन्दजी) थे, इसीलिए उसकी चिकित्सा कराकर मठ में काम पर रखे हैं।

तुम्हारे लिये मुझे बहुत कष्ट होता है, लगता है कि मैं तुम्हें पकड़कर रखा हूँ ! फिर सोचता हूँ, यहाँ रहने के फलस्वरूप reasoning (तर्कशक्ति) जितनी पक्की हुई है, अन्यत्र कहीं भी उतना सुयोग नहीं था। यहाँ तुम्हारा कोई भी आध्यात्मिक अनिष्ट नहीं होगा।

पुरुलिया के प्रधानाध्यापक ने 'कामारपुकुर' नामक कविता को साइक्लोस्टाइल करके भेजा है। दार्शनिक दृष्टि स्पष्ट नहीं रहने पर इसका रसास्वादन नहीं कर सकोगे। मेरी इच्छा है कि माणिकराजा के आम-बागान और चार धामों की बातें भी कहूँगा।

रा... ने 'मुषाय' और 'द्रुत' शब्दों का अर्थ पूछा था, स्वामीजी ने अंग्रेजी में क्या कहा है, देखो तो। वह लड़का बहुत परिश्रमी है, प्रचण्ड ऊर्जावान है।

देखो, आपसी विचार-विमर्श से बुद्धि का विकास होता है, तुम्हारे साथ पढ़ते-पढ़ते मुझे अनेक बातें सुस्पष्ट हो गई हैं। 'त्वां ऋतेऽपि' शब्द का अर्थ मुझे स्पष्ट ज्ञात नहीं था, उस दिन सुनते-सुनते उसे समझ गया। तुमने जो कहा कि अवतार का कोई भी कार्य व्यर्थ नहीं होता, यह बात उच्च कोटि की है, खूब मर्मस्पर्शी है। इसी का नाम है बुद्धियोग।

(संघ में हाल ही में सम्मिलित होनेवाले) नि... के पिता का हमें ध्यान रखना है। अरे ! हमारे नि... के पिता ! ठाकुर ही कितना ध्यान रखते थे।

२३-०३-१९६४

कल अपराह्न में रा...आया है, थोड़ा कुछ खाने को दिया गया। वह कुर्सी पर बैठकर खाने में संकोच करता है, कहता है, "मैं इतना बड़ा नहीं हूँ।"

महाराज – यहाँ कोई छोटा-बड़ा नहीं है। यह कौन-सी वस्तु है, जिसे उसने बनाकर दिया था?

रा... – वह तो इतना ही, फिर एक माह पूर्व ! आपको याद है?

महाराज – 'प्रेम नगर में रहते हैं पास में ....।'

सायंकाल टहलते हुए –

महाराज – इसने (रा...ने) एक अच्छी बात कही है, ठाकुर के समय आने पर मैं उन्हें ग्रहण नहीं करता, इसीलिए इस समय आकर अच्छा ही किया हूँ ! अब वे प्रसिद्ध हो गए हैं, समझना सरल हो गया है।

आध्यात्मिक जीवन का मूलाधार है ब्रह्मचर्य। इसे प्रत्येक नवागत को बताना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य के बिना ब्रह्मचारी जीवन हो ही नहीं सकता। जो अपने को बड़ा समझता है, वह दुख पाएगा, साधु के जीवन में दीनता अति अमूल्य सम्पदा है। अभी उसे गीता के सोलहवाँ अध्याय को अच्छी तरह समझते हुए चलना चाहिए। गीता के सारभूत भाव को वह कुछ भी नहीं समझता। विश्वविद्यालय से अध्ययन करके आया है। वहाँ अध्ययन करने से कुछ नहीं तो, बुद्धि का विकास तो होता है, दस लोगों के साथ मिलने-जुलने से दस प्रकार की संस्कृति, बुद्धिमान लोगों को देखने से अपना बहुत विकास होता है।

सेवक ने पुरानी पत्रिकाओं का संग्रह किया है, इसे देखकर महाराज ने कहा, क्या होगा, बाद में कोई बेच देगा। मेरे मस्तिष्क में पुस्तकालय-क्रान्ति है। ढाका में बहुत सफल हुआ था ! वह स्थान बहुत विस्तृत है। वहाँ ब्राह्मण, वैद्य और कायस्थ अत्यन्त उत्साही हैं, कोई भी नया भाव आने से ही वे ग्रहण करेंगे। वह तो एक – उपनिवेश है न ! मैंने कहा था कि वह अमेरिका राढ़ ब्राह्मणों (बंगाल में भागीरथी के पश्चिम का क्षेत्र) का इंग्लैंड है। राढ़ों की संस्कृति की ही तरह तो सारा बंगाल चल रहा है। हरि हरि बोलो, बोलो जय रामकृष्ण ! रामकृष्ण और चींटी में क्या अन्तर है? चींटी एक हजार मील नीचे उतर आई है और मैं हूँ पाँच सौ मील नीचे और श्रीरामकृष्ण उनका तो शरीर चिद्घनकाय है ! ठाकुर की कृपा से मैं सुस्पष्ट रूप से जानता हूँ – '**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**।'

मेरा भक्ति-भाव दब गया है। इसके अलावा शरीर अस्वस्थ होने के कारण संसार दुखमय लगता है। कोई भी व्यक्ति मुझे अच्छा नहीं लगता। मो... बाबू तो घर के व्यक्ति जैसे हैं, मेरे बालसखा हैं, अन्तिम समय तक भी एक-साथ रहा हूँ, किन्तु वे भी अच्छे नहीं लगते। तुमलोगों जैसे दो-चार लोगों के प्रिय मुखों को देखने के कारण ही किसी तरह जीवित हूँ।

दोपहर में सुनील महाराज भजन की पुस्तक से पढ़कर सुना रहे हैं। महाराज ने गा-गाकर सुनील महाराज को एक सुर सिखाया। तत्पश्चात् 'एमन मधुमाखा हरिनाम निमाई कोथाय होते एनेछे' – अर्थात् ऐसा मधुर हरिनाम निमाई कहाँ से लाया है, इस भजन की १-२ पंक्तियों को गाने लगे, भाव से गला अवरूद्ध हो जा रहा है, आँखों से प्रेमाश्रु झर रहे हैं। उन्होंने कहा – शिवरात्रि में रातभर भजन, नृत्य, नृत्य करते-करते भोर हुआ, उसके बाद स्नान और भोजन। दुर्गापूजा में सौम्यानन्द और गोसाईं के एक बालक का कैसा अद्भुत भजन ! हाय, हाय ! सामने अपार समुद्र और प्यास से मेरी छाती फटी जा रही है।

२५-०३-१९६४

महाराज – कल एक व्यक्ति ने मुझसे कहा था – "अब आपका पाप क्या है? आपने क्या पाप किया है?" मैंने कहा – राम, राम ! कितना किया है ! कितना कुछ किया हूँ !

सुनील – वह तो पूर्वजन्म जन्म में।

महाराज – हा, हा, पहले के जन्मों का क्या? यूकोलिप्टस का पेड़ देखा है? उसके पत्तों को देखा है? पत्ते कितनी बार गिरते हैं और कितनी बार नये होते हैं, किन्तु पेड़ जैसा का तैसा ही रहता है। उसी प्रकार मैंने कितने जन्म लिए हैं, केवल देह को बदला है।

सृष्टि के सम्बन्ध में नवयुवकों की जिज्ञासा पर किसी महाराज ने कहा है – over-curious (अति-जिज्ञासु), किन्तु गीता में है – 'अव्यक्ताद् व्यक्तय: सर्वा:' – अव्यक्त से ही सब कुछ व्यक्त हुआ है। माँ ने तो भी सृष्टि की कितनी बातें कही हैं। इसके अलावा Transmingration of soal (आत्मा का देहान्तरण) की बात जानकर ही तो आशा और उत्साह आता है। यह जन्म कुछ भी नहीं है, अपने को सुधारने का अनन्त समय रहता है, जो जितनी जल्दी करेगा, वह उतना फल पाएगा।

मैं तो पुनर्जन्म की बात सुनकर भयभीत हो जाता हूँ। बाप रे, इसके बाद कहाँ जन्म लूँगा – शायद पुर्तगाल में। इस जन्म का सब कुछ भूल जाएगा, थोड़ा भी याद नहीं रहेगा। सुषुप्ति में देखो न, क्या रहता है, कुछ भी नहीं। तब चौदह भुवन ही क्या, चिदाकाश। चिदकाश भी क्या ! 'मैं मरा कि बला टली !'

अमियप्राणा माताजी (सुषमा दीदी) के देहान्त का समाचार मिला है।

महाराज – पहले मस्तिष्क सक्रिय (ब्रेन ऐक्टिव) नहीं था। अब सक्रिय होने से सब बातें याद आती हैं, तो कष्ट होता है। सुषमा की सभी बातें याद आ रही हैं – लगता है कि सर्वप्रथम मठ में भेंट हुई थी, रंग काला था। पिता शायद वकील थे, ढाका में घर था। उसका ठीक-ठीक वैराग्य था। अधिकांश लोग दुख-कष्ट पाकर त्याग करते हैं। सुश्री का त्याग प्रभु महाराज ने कराया। किन्तु इसका 'कायक्लेशभयात्' नहीं है, ठीक सात्त्विक त्याग है ! उसे कितना पत्र लिखा हूँ !

शरीर मोटे तौर पर चलने लायक होने पर ठीक है। शरीर का कष्ट कुछ भी नहीं है। इस शरीर की बात कहता हूँ, कोई ब्रह्मतत्त्व का प्रसंग उठा दो, अभी तुरन्त उसमें लग जाऊँगा। सारा जीवन ही बिता दिया हूँ। इस सारदा मठ को लेकर क्या-क्या हंगामा नहीं किया हूँ। वे लोग समस्या बतातीं, मैं उत्तर देता। फिर सभी बैठकर पाठ करते। मेरे

शेष भाग पृष्ठ १२४ पर

प्रश्नोपनिषद् (१०)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

यस्मिन् इदं श्रितं विश्वं स एव प्रजापतिः संवत्सर-आख्यः स्व-अवयवे मासे कृत्स्नः परि-समाप्यते –

जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् आश्रित है, वही संवत्सर नामक प्रजापति – अपने अवयवों के रूप में मास (बारह महीनों) के अन्दर सम्पूर्ण रूप से समा जाता है –

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्।।१२।।

अन्वयार्थ – मासः वै मास ही **प्रजापतिः** प्राण तथा अन्नरूप मिथुनात्मक प्रजापति है। **तस्य** उसका **कृष्णपक्षः** कृष्णपक्ष **एव** ही **रयिः** अन्न या चन्द्रमा है, **शुक्लः** शुक्लपक्ष **प्राणः** प्राण, अत्ता या अग्नि है। **तस्मात् एते** ये **ऋषयः** प्राणदर्शी ऋषिगण **शुक्ले** शुक्लपक्ष में **इष्टम्** याग **कुर्वन्ति** करते हैं; (परन्तु) **इतरे** अन्य लोग **इतरस्मिन्** दूसरे अर्थात् कृष्णपक्ष में (करते हैं)।

भावार्थ – मास ही प्राण तथा अन्नरूप मिथुनात्मक प्रजापति है। उसका कृष्णपक्ष ही अन्न या चन्द्रमा है, शुक्लपक्ष प्राण, अत्ता या अग्नि है। ये प्राणदर्शी ऋषिगण शुक्लपक्ष में याग करते हैं; (परन्तु) अन्य लोग दूसरे अर्थात् कृष्णपक्ष में (किया करते हैं)।

भाष्य – मासः वै प्रजापतिः। यथोक्त-लक्षण एव मिथुनात्मकः। तस्य मासात्मनः प्रजापतेः एको भागः कृष्णपक्षः रयिः अन्नं चन्द्रमाः। अपरः भागः शुक्लः शुक्लपक्षः प्राणः आदित्यः अत्ता अग्निः।

भाष्यार्थ – 'मास' ही निश्चित रूप से प्रजापति है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, यह मिथुनात्मक अर्थात् जोड़े के रूप में है। उस मास-रूप प्रजापति का एक भाग कृष्णपक्ष – चन्द्रमा या अन्न है। उसका दूसरा भाग शुक्लपक्ष – प्राण, अग्नि, सूर्य या अत्ता (भोक्ता) है।

यस्मात् शुक्लपक्ष-आत्मानं प्राणं सर्वम् एव पश्यन्ति तस्मात् प्राणदर्शिनः एते ऋषयः कृष्णपक्षे अपि इष्टं यागं कुर्वन्ति प्राण-व्यतिरेकेण कृष्णपक्षः तैः न दृश्यते यस्मात्।

चूँकि ये ऋषिगण प्राण को शुक्लपक्ष के साथ अभिन्न रूप में और सब कुछ के रूप में ही देखते हैं, अत: प्राण (प्रजापति) की अनुभूति करनेवाले ये लोग कृष्णपक्ष में भी अपना अभीष्ट याग करते हैं, क्योंकि उन्हें कृष्णपक्ष भी 'प्राण' से भिन्न कुछ नहीं दिखता। (अर्थात् कृष्णपक्ष में याग करके भी शुक्लपक्ष का फल पाते हैं।)

इतरे तु प्राणं न पश्यन्ति इति अदर्शन-लक्षणं कृष्ण-आत्मानम् एव पश्यन्ति। इतरे इतरस्मिन् कृष्णपक्षे एव कुर्वन्ति शुक्ले कुर्वन्तः अपि॥१२॥

परन्तु प्राण को न जाननेवाले अन्य (चन्द्रोपासक, पितृयान या दक्षिण मार्गवाले) लोग अदर्शन रूप कृष्णपक्ष को ही देखते रहते हैं। अत: ये अन्य लोग शुक्लपक्ष में करते हुए भी मानो कृष्णपक्ष में ही करते हैं। (प्राण को न देखना या समझना ही कृष्णपक्ष है।)

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते।।१३।।

अन्वयार्थ – अहः-रात्रः दिन-रात-रूपी मिथुन **वै** ही **प्रजापतिः** प्रजापति है। **तस्य** उसका **अहः** दिन एव ही **प्राणः** प्राण, अत्ता या अग्नि है; **रात्रिः** रात एव ही **रयिः** अन्न या चन्द्रमा है। **ये** जो लोग **दिवा** दिन में **रत्या** रति के कारणभूत (स्त्री के साथ) **संयुज्यन्ते** संयुक्त होते हैं; **एते** ये लोग **वै** अवश्य ही **प्राणं** दिवसात्मक प्राण को **प्रस्कन्दन्ति** नि:सारित या शोषित करते हैं; **यत्** जो लोग (ऋतुकाल के दौरान) **रात्रौ** रात में **रत्या** रति के कारणभूत (स्त्री के साथ) **संयुज्यन्ते** संयुक्त होते हैं; **तत्** वे (पुत्रार्थी गृहस्थ) **ब्रह्मचर्यम्** ब्रह्मचर्य-स्वरूप **एव** ही हैं।

भावार्थ – दिन-रात-रूपी मिथुन ही प्रजापति है। उसका दिन ही प्राण, अत्ता या अग्नि है; रात ही अन्न या चन्द्रमा है। जो लोग दिन में रति के कारणभूत (स्त्री के साथ) संयुक्त होते हैं; वे लोग अवश्य ही दिवसात्मक प्राण को नि:सारित या शोषित करते हैं; जो लोग (ऋतुकाल के दौरान) रात में रति के कारणभूत (स्त्री के साथ) संयुक्त होते हैं; वे (पुत्रार्थी गृहस्थ) ब्रह्मचर्य-स्वरूप ही हैं।

भाष्य – सोऽपि मासात्मा प्रजापति: स्व-अवयवे अहोरात्रे परिसमाप्यते। अहोरात्रो वै प्रजापति: पूर्ववत्। तस्य अपि अह: एव प्राणो अत्ता अग्नि: रात्रि: एव रयि: पूर्ववत्। प्राणम् अह: आत्मानं वा एते प्रस्कन्दन्ति निर्गमयन्ति शोषयन्ति वा स्वात्मनो विच्छिद्य अपनयन्ति।

भाष्यार्थ – वे मास-रूपी प्रजापति भी अपने अंगों के रूप में एक दिन-रात में ही सीमित हो जाते हैं। पूर्ववत् – दिन और रात ही प्रजापति हैं। पूर्ववत् – उनका भी दिन ही प्राण, अत्ता या अग्नि है और रात ही रयि (अन्न या चन्द्र) है। ये लोग दिनरूपी 'प्राण' को, स्वयं से अलग करके, निकाल, सुखा या नष्ट कर डालते हैं।

के? ये दिवा अहनि रत्या रति—कारण-भूतया सह स्त्रिया संयुज्यन्ते मिथुनं मैथुनम् आचरन्ति मूढा:। यत: एवं तस्मात् तत् न कर्तव्यम् इति प्रतिषेध: प्रासंङ्गिक:।

कौन लोग? वे मूढ़ (अविवेकी) लोग, जो दिन के समय रति के लिये स्त्रियों के साथ जुड़ जाते हैं ...। इस कारण वैसा आचरण नहीं करना चाहिये – इस प्रकार इस प्रसंग में उसका निषेध किया गया है।

यत् रात्रौ संयुज्यन्ते रत्या ऋतौ ब्रह्मचर्यम् एव तत् इति प्रशस्तत्वात् ऋतौ भार्या-गमनं कर्तव्यम् इति अयम् अपि प्रासंङ्गिको विधि:।

जो लोग रात के समय ऋतु काल में रति के लिये जुड़ जाते हैं, वे तो ब्रह्मचर्य रूप ही हैं; चूँकि यह प्रशंसनीय (मान्यता) है, अत: ऋतुकाल में भार्यागमन करना चाहिए – यह भी इस प्रसंग में विधि है।

प्रकृतं तु उच्यते – स: अहो-रात्रात्मक: प्रजापति: व्रीहि-यव-आदि-अन्न-आत्मना व्यवस्थित:।।

यहाँ प्रासंगिक बात यह है कि दिन-रात के रूप में प्रकट होनेवाले प्रजापति – धान, जौ आदि अन्न के साथ तादात्म्य के रूप में स्थित हैं।।१३।। **(क्रमश:)**

पृष्ठ १२२ का शेष भाग

चारों और नवयुवकों का समूह और अन्त में युवतियाँ भी अपनी समस्याएँ लेकर आती थीं। मैं भी यथाशक्ति उनकी सेवा करके जीवन धन्य करता था, समझता था कि यही मेरी ठाकुर-सेवा है ! सचमुच ही वह जीवन का उत्सवमय समय था।

सुशील बाबू की लड़कियाँ साध्वी हुई हैं। सुशील बाबू सी.आई.डी. थे। गाँव के लोग इसके बीच अंग्रेजों का अत्याचार भूल गए हैं। सुशील बाबू को देखते ही तुम तुरन्त समझ जाओगे – ठीक बात ! वे गाँव के शत्रु हैं ! किन्तु मैं उनका दूसरा पक्ष देखता हूँ – ठाकुर पर उनकी भक्ति को देखता हूँ। अंग्रेजों ने कौन-सा अत्याचार नहीं किया है ! उँगली के अग्रभाग में सुई घुसा देते थे। जिस दिन खुदीराम बोस की फाँसी हुई, उस दिन सबेरे उठकर उन्होंने गीता-पाठ किया। (यह कहते-कहते महाराज का गला भर आया, उसी अवस्था में कहते हैं) मास्टर महाशय कहते थे – वे सब ऋषि-पुत्र थे। (महाराज के नेत्रों में आँसू थे)। **(क्रमश:)**

श्रीरामकृष्ण प्रभु अज अविनाशी

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

रामकृष्ण प्रभु अज अविनाशी, करो सकल जग का उद्धार।
जीवन का त्रिताप हरो प्रभु, ले जाओ भवसागर पार।।
विषय-भोग के दावानल में, दहक रहा सारा संसार।
एक कृपामय केवल तुम हो, जो देते हो भक्ति अपार।।
तव चरणों की विमल भक्ति से, उर में आये शान्ति अपार।
विषय-भोग की विकट कामना, तजता साधक देख असार।।
हे जीवन के परम प्राणप्रिय, प्रकटो अपना रूप उदार।
दया करो प्रभु दीन दयामय, ले जाओ भवसागर पार।।

समय अमूल्य है : पल-पल का सदुपयोग करें

विजय कुमार श्रीवास्तव, सीतापुर (उत्तर प्रदेश)

आज के युग में पाश्चात्य शैली के रंग में रंगा युवा वर्ग शनैः शनैः आलसी होता चला जा रहा है। वह अपने जीवन का अधिकांश समय प्राय: निरुद्देश्य भ्रमण, हास्य-परिहास तथा व्यर्थ की टाल मटोल में गवाँ बैठता है जबकि उसके भाग्य को चमकाने वाला समय प्रतिक्षण ही उसके आस-पास दस्तक दिया करता है। कौन-सा क्षण हमारी दिशा और दशा बदलने के लिए हमें पुकार रहा है, हमें अपने अन्दर सजगतापूर्वक उसकी आवाज सुनने की क्षमता का विकास करते रहना चाहिए। समय का एक छोटे-से-छोटा पल भी हमें उच्चतम उपलब्धि से सँवार सकता है।

समय की चाल एक नैसर्गिक व्यवस्था पर चलती है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक क्षण का अपना एक विशेष महत्त्व होता है। इसी के अनन्तर हमें जीवन के अनेकों सुखान्त अवसर प्राप्त होते हैं। यदि असावधानी अथवा प्रमादवश हम अपने जीवन में मिलने वाले इन अवसरों का लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं तो सिवाय पछतावे के अन्य कुछ हाथ नहीं आता। व्यक्ति को समय के प्रति सदैव निष्ठावान बने रहना चाहिए। प्रत्येक क्षण का भरपूर सदुपयोग अपने सकारात्मक चिन्तन, कार्य अथवा भगवत्स्मरण में ही करने का प्रयास करना चाहिए। उन आलसी लोगों की तरह जीवन बिताना अत्यन्त घातक हो सकता है जिनकी धारणा होती है कि जीवन तो पर्याप्त विस्तार वाला है, वे अपना कार्य कभी भी चुटकियों में निबटा लेंगे। इनमें से ही कुछ के मुख से मैंने स्वयं कहते हुए सुना है – ''आज करे सो काल कर, कल करना सो परसों। जब चाहेंगे हो जायेगा, जीना अभी है वर्षों।'' ध्यान रहे – ऐसे व्यक्तियों का कार्य तो कभी पूर्ण होता नहीं, अपितु आलस्यवश गँवाये हुए समय के बीच से दिव्य प्रेरणा से प्रेरित फलदायी क्षणों का भी लोप हो जाता है। ऐसे लोगों का विवेक तो तब जागृत होता है जब या तो उनकी कार्य करने की क्षमता क्षीण हो चुकी होती है अथवा जीवन की दौड़ में वे इतना पिछड़ गये होते हैं कि सिवाय मुँह छिपाकर बैठने के अन्य कोई विकल्प नहीं बचता। उपनिषदों में 'चरैवेति चरैवेति' कहकर सफल जीवन की साधना साधने पर बल दिया गया है। अपने सामान्य जीवन में आपने 'कछुआ और खरगोश' की वह कहानी तो अवश्य पढ़ी होगी, जिसमें धीमी चाल चलकर भी कछुये ने खरगोश को मात दे दी थी। जब कछुये जैसा क्षुद्र प्राणी भी समय के सकारात्मक उपयोग से सफलता की भित्तियों को लाँघ सकता है तो विवेकशील व पुरुषार्थ का धनी मानव क्या नहीं कर सकता? हाँ! इसके लिए उसे समय का मूल्य तो समझना ही होगा।

जीवन को सफल सोपान प्रदान करके महिमामण्डित करने का अहोभाग्य जिन पौरुषवान व्यक्तियों को मिला है, प्राय: वे समय की गरिमा को समझते रहे हैं। उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को अमूल्य समझते हुए उनका तिल-तिल सदुपयोग किया है। ऐसे लोगों ने अपने जीवन की सार्थकता का श्रेय भी समय की साधना को ही दिया है। उन्होंने समग्र रूप से अपने अमूल्य समय के सदुपयोग को उत्थान का प्रमुख घटक तथा समय की अवहेलना को पतन का द्वार माना है। व्यक्ति के पास अपनी जीवन-परिचर्या के लिये आवश्यक न्यूनतम समय का सदुपयोग करने के उपरान्त भी काफी समय शेष बचा रहता है जिसका अनेकों प्रकार से सदुपयोग किया जा सकता है। हम अपनी दिनचर्या में इस अतिरिक्त समय को पठन-पाठन, अध्यापन, बागवानी, पशु-सेवा, सह-उद्योग, ज्ञानपरक लेखन, कला अथवा परोपकार के कार्यों में लगा सकते हैं। इससे हमारे अन्दर एक तो पुरुषार्थ की प्रवृत्ति दृढ़ होती रहेगी, दूसरे हम समाज के लिए भी उपयोगी नागरिक साबित हो सकेंगे। हो सकता है कि अब तक आप अपने जीवन के बहुत-से अतिमूल्यवान क्षण व्यर्थ ही गँवा

चुके हों, अभी सावधान हो जायें और उचित समय-पालन से अपने जीवन-अभियान में ऐसी दिनचर्या नियोजित करें, जिसके अन्दर एक भी क्षण व्यर्थ न जाने पाये, जैसा कि समय-परिपालन हमारे पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के जीवन में चार चाँद लगाता रहा और वर्तमान में भी हमारे राष्ट्र के प्रबुद्ध प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र दामोदर मोदी के जीवन में झलकता है। इस क्रम में याद रखें 'आस्कर' के उन चेतावनी भरे शब्दों को जिसमें उन्होंने कहा है – 'अभी सतर्क न हुए, तो बाद में पछताना पड़ेगा।'

समय एक दैवी प्रवाह के अधीन अत्यन्त द्रुत गति से आगे बढ़ता रहता है। जिस प्रकार नदी की धारा में जल की एक नन्ही बूँद निरन्तर आगे बढ़ती जाती है व पुन: पीछे नहीं आती, क्रमतर उसके पीछे आने वाली असंख्य बूँदों की भी यही गति होती है। समय का प्रत्येक क्षण भी इसी प्रकार प्रवाहित हुआ करता है। 'दान्ते' ने ठीक ही कहा है – 'बीत रहा आज फिर वापस नहीं लौटेगा।'' हमें समयपरायण बनने के लिये वर्तमान का अधिकतम उपयोग करना चाहिए। समय के प्रत्येक क्षण का सार-रस निचोड़कर जीवन कोष में संचित करने के लिये हमारी व्यापक संकल्पशीलता और उत्साह हमें सदैव जीवन्त बनाता है। इन क्षणों का भली प्रकार सदुपयोग करना ही हमारे जीवन का मूलमन्त्र है। यहाँ मैं अब इसी से जुड़ा एक उदाहरण देना चाहूँगा। एक बार किसी व्यक्ति ने ''जार्ज बर्नार्ड शा' से पूछा – ''आप अपनी दाढ़ी साफ क्यों नहीं करते? इस पर शा ने उत्तर दिया, ''इससे समय नष्ट होता है। प्रतिदिन चार मिनट बचाकर अब तक मैंने अपने जीवन के दस महीने बचा लिए हैं।'' आप अनुभव कर सकते हैं, एक विद्वान व्यक्ति की समय के प्रति मूल्यपरता की धारणा की पहुँच जिसके रहते उन्होंने समय के महत्त्व को समझाने की चेष्टा की।

मैं स्वयं पेशे से एक अध्यापक रहा हूँ। अत: युवाओं के उचित मार्गदर्शन का सामाजिक दायित्व भी मेरे ऊपर स्वभावगत रहा है। अपने पूरे सेवाकाल के दौरान निश्चित समय पर ही विद्यालय पहुँचकर अपने दायित्वों का बिना कोई क्षण गँवाये, कार्य निष्पादन करना ही सदैव मेरी जीवन शैली रही है। जब भी मेरा कोई खाली घंटा हुआ और किसी कक्षा के छात्र भी खाली मिल गये, उन्हें मैंने सदैव किसी-न-किसी शैक्षिक उपक्रम से जोड़कर देखा। इससे मुझे स्वयं में तो आनन्द आया ही, छात्र भी समय का लाभ उठा सके। इतना ही नहीं, विद्यालय के बाद इस अवकाश के दिनों में भी, मेरी कार्य-शैली कहीं कुण्ठित न हो जाय, इस विचार से प्राय: अपने को विद्यालय में विकसित वाटिका, विद्यालय साज-सज्जा, खेलकूद व अन्य पाठ्य सहगामी क्रिया-कलापों की योजना से जोड़े रखा। यदि कुछ समझ में नहीं आया, तो स्वयं एक झाड़ू ही हाथ में लेकर साफ-सफाई का अंग बन जाना भी समय की सदुपयोगिता के उद्देश्य से मुझे अच्छा लगता रहा है। मैंने इस प्रवृत्ति का प्रत्यारोपण अपने प्रिय छात्रों में भी सफलतापूर्वक किया, जिससे उनके भी जीवन में व्यापक निखार सम्भव हो सका।

राष्ट्र के होनहार युवाओं से मेरी अपेक्षा है कि वे स्वयं सदाचारी, मितव्ययी व कर्मशील बनकर समय के मूल्य की सार्थकता के प्रेरक बनें। उनके पास व्यर्थ की चर्चाओं, कलुषित राजनीति, अनावश्यक प्रमाद और कार्यों के प्रति टाल-मटोल की प्रवृत्ति फटकने तक न पाये और वे जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग एक सजग एवं उत्साही नागरिक बनकर कर सकें, तो निश्चित ही उनका जीवन धन्य हो जायेगा। अत: आवश्यक है कि वर्तमान युवा पीढ़ी समय का मूल्य समझे और प्रत्येक क्षण का अधिकतम सदुपयोग सजगतापूर्वक कर सके। अन्त में पाठकों को विनम्रतापूर्वक स्मरण कराना चाहूँगा 'उमर खैयाम' की उन पंक्तियों की जो आपके चिन्तन को एक नवीन आयाम दे सकती हैं –

हमारा जीवन पक्षी,
केवल थोड़ी दूर तक ही उड़ सकता है।
इसने पंख फैला दिये हैं,
देखो, यथाशीघ्र इसकी दिशा सोच लो।।

मित्रो ! हमारे जीवन की अवधि सीमित है और समय मूल्यवान है, इसका कोई भी क्षण व्यर्थ न जाने पाये। इस प्रकार आपकी सजगता ही जीवन के क्षणों की सार्थकता हो सकती है और बन सकता है आपका जीवन भी धन्य ! ○○○

जिसके पास विश्वास है, उसके पास सबकुछ है, जिसके पास विश्वास नहीं उसके पास कुछ भी नहीं। भगवान के नाम पर विश्वास हो तो असम्भव सम्भव हो सकता है। विश्वास ही जीवन है और अविश्वास मृत्यु।

विश्वास रखो। भगवान पर भरोसा रखो। फिर तुम्हें स्वयं कुछ नहीं करना पड़ेगा। माँ काली ही तुम्हारे लिए सब कुछ कर देंगी। – श्रीरामकृष्ण देव

जीवन में सच्ची सफलता और उसका रहस्य

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

जीवन की सच्ची सफलता में और साधारण सफलता में आकाश-पाताल का अन्तर है। जैसे, एक मुनी वेदान्ती थे, उदार थे, सबको आशीर्वाद देते थे। वे सदा कौपीन पहनते थे। उनके पास एक बड़ा खप्पर था। टोपी के समान कुछ पहनते थे, एक झोली थी। भिक्षा करके खाते थे। कभी शिवजी और कभी कृष्ण का नाम लेते थे। खप्पर में जो मिला, भिक्षा समझकर खा लेते और पानी पी लेते थे। बच्चे उन्हें महादेव बाबा कहते थे। निर्धन, बेघर, भीख माँगनेवाले थे, इसलिए सबसे असफल थे। उन्हें कुछ बचाने और जो नहीं है, उसे पाने की चिन्ता नहीं थी।

लोगों के पास घर-द्वार, परिवार, संसार सबकुछ है, पर असंतुष्ट हैं, अधिक पाने की महती इच्छा बनी हुई है। अब सोचो, महादेव बाबा का जीवन सफल है या हमारा?

हम मानते तो हैं, पर जानते-करते नहीं हैं। जीवन की सफलता जीवन की विसंगतियों, दुराग्रहों, इच्छाओं के त्याग में है। संन्यासी सम्यक्रूपेण न्यस्त करता है। न्यस्त माने छोड़ना होता है। संन्यासी सबको छोड़ता है, सबका त्याग करता है। वह सुख-दुख से असंग रहता है। मनुष्य को भी सुख-दुख में अविचलित रहकर भगवान से जुड़ने का अभ्यास करना चाहिए, तभी सफल जीवन होगा।

सफलता का अर्थ है दुखी नहीं होना। इसका अर्थ यह नहीं कि दुख नहीं तो सुख है। सुख-दुख का सम्बन्ध मन से है। हम अपने संस्कारों के कारण, अपने मन के कारण सुख-दुख पाते रहते हैं।

सच्चा, स्थायी सुख है अपने आप में ! आत्मा में ! घटनाओं से नहीं, वस्तुओं में नहीं, स्थूल में नहीं। जो अपने आप में तुष्ट है, सन्तुष्ट है, उसे अपने से भिन्न व्यक्ति, वस्तु, तत्त्व की आवश्यकता नहीं होती है। यह जीवन में सफल व्यक्ति का लक्षण है, सफलता का मापदण्ड है – दुख में जिसका मन उद्विग्न नहीं होता है।

कार्य करने से ही सुख-दुख होता है। आसक्ति, लगाव, बार-बार चिपकना यही दुख, असफलता का कारण है। 'स्पृहा' आ गई, तो ना मिलने पर दुख, मिलने पर सुख, फिर मिलने की आस असफलता का सबसे बड़ा कारण है। यह संसार हमें प्रारब्ध से मिला है। ज्ञान-मार्ग कठिन है। सुख-दुख जो हमें वर्तमान में मिला है, इसे प्रभु की कृपा मानकर उसमें संतुष्ट होने का प्रयत्न करें। सन्तुष्ट होने का तराजू का उदाहरण श्रीरामकृष्ण देव देते हैं, जो 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' में मिलता है। सोनार पलड़े की ओर नहीं देखता, वह जहाँ ऊपर और नीचे का काँटा मिला है, वहाँ देखता है। ऊपर का काँटा ईश्वर है और नीचे का काँटा हमारा मन है। ईश्वर से मन हटने पर हम असफल हो जाते हैं। उसी का जीवन सफल है, जो सुख-दुख में ईश्वररूपी काँटे से मनरूपी काँटे को मिलाता है। सफलता का अर्थ पूर्ण तृप्ति है। चित्त की चंचलता ही दुख है, चित्त की स्थिरता ही सुख है। जिसको पाकर बड़ा लाभ है, जीवन में सबकुछ पा लिया, उपलब्धि की आकांक्षा नि:शेष हो जाये। दु:ख में मन उद्विग्न ना हो, सुख में चिपके नहीं, वह सफलता है। जीवन में अच्छा लगने लगा, यश, पैसा, गाड़ी, सब कुछ पा लिया, पर अर्थराइटिस हो गया, तो किस काम का पैसा! जो बड़े-से-बड़े दुख में विचलित नहीं होता, कुछ पाने की इच्छा नहीं, सन्तुष्ट है, वह सफल है।

इसका रहस्य है 'रामकृष्ण शरणम्'। जीवन की सफलता ईश्वरशरणागति के सिवाय नहीं मिलती। अगर ईश्वर शरणागति रहेगी, तो कोई अभाव नहीं रहेगा।

संन्यासी सफल था, वह आधी बात थी। सम्पूर्ण मानव जीवन के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को हमारे पूर्वजों ने, ऋषि-मुनियों ने स्वीकार किया। जीवन के आदि और अन्त को जोड़ो, तो उसके बीच जीवन में कुछ मूल्यवान है। हिन्दू-दर्शन दरिद्रता के एकदम विरुद्ध है। त्याग दरिद्रता नहीं है, भीखारीपन नहीं है। गौतमबुद्ध ही संन्यासी होने के लिये योग्य थे। सफल जीवन का आधार है सम्पन्नता। शरीर से, मन से, आरोग्य से, धन से सम्पन्नता। सम्पन्नता का पूरा विकास हो जाये। हिन्दू-दर्शन पलायनवाद का परम शत्रु है। त्याग या संन्यास पलायनवाद नहीं है। हम दरिद्रता के विरोधी और सम्पन्नता के पक्षपाती हैं।

जीवन की सफलता का रहस्य क्या है? हिन्दुशास्त्र कहता

शेष भाग पृष्ठ १४१ पर

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६३)

स्वामी भूतेशानन्द

(३९)

प्रश्न – महाराज ! स्वयं भगवान की वाणी गीता है, वचनामृत इत्यादि स्मृति हुई और ऋषि-मुनियों की वाणी, जो वेद में है, वह श्रुति – वेद हुई। कहा जाता है कि स्मृति के प्रमाण से अधिक शक्तिशाली श्रुतिप्रमाण है। तब तो स्वयं भगवान की वाणी से ऋषि-मुनियों की वाणी का प्रमाण अधिक है।

महाराज – उसका कारण है – श्रुति का कोई आदि-अन्त नहीं है। किन्तु स्मृति का आदि है। एक व्यक्ति से स्मृति आरम्भ हो रही है। श्रुति का आदि नहीं, कर्ता नहीं है। श्रुति अनादि है। इसलिए इसका प्रमाण अधिक है।

– अर्थात् स्मृति अपौरुषेय नहीं है, यही तो।

महाराज – निश्चय ही।

प्रश्न – महाराज यदि कोई हमलोगों को कठोर वचन कहे, हमलोगों का तिरस्कार करे, तो क्या उसका विरोध करना चाहिए? एक व्यक्ति कह रहा था, विरोध करना अहंकार की अभिव्यक्ति है। फिर किसी ने कहा, आत्मसम्मान को बचाये रखने के लिए थोड़ा फुफकारना चाहिए।

महाराज – 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्' (१२/१९) – गीता में नहीं है क्या? उसका क्या करोगे? आत्मसम्मान का प्रश्न आने पर, जो आदर्श ग्रहण किये हो उसका 'कायमनवाक्ये' – तन-मन-वाणी से सम्मान करना, जीवन में ग्रहण करना। किन्तु क्या तुमलोग गेरुआ पहनकर सम्मान चाहोगे?

– महाराज ! फुफकारने के सम्बन्ध में तो ठाकुर ने भी कहा है, त्यागी को फुफकारने की आवश्यकता नहीं है।

महाराज – तब?

– कार्य करते समय वैसी परिस्थिति आने पर थोड़ा फुफकारने से सुविधा होती है।

महाराज – तब तो, तुमलोग सुविधावादी हो !

प्रश्न – महाराज ! आपको चन्दा लेने के लिए द्वार-द्वार जाना पड़ा है?

महाराज – कितनी बार गया हूँ। एक बार एक सेठ के घर गया। दरवान घर में प्रवेश नहीं करने दे रहा है। वह कह रहा है – "इस पेड़ के नीचे साधु लोग जैसे बैठते हैं, वहाँ जाकर बैठो।" मैंने सोचा – ठीक ही तो, मेरा स्थान तो तरु-तल ही है। जाकर पेड़ के नीचे बैठ गया। थोड़ी देर बाद याद आया, पाकेट में आश्रम का एक कार्ड था। उसे ले जाकर कहा – इस कार्ड को सेठजी को दे दो। उसने कहा – "मैं गेट छोड़कर कैसे जाऊँगा? (सभी हँसते हैं) उसके बाद एक परिचारक (सेवक) को देखकर उसे उस कार्ड को दिया। उसने कृपा कर उस कार्ड को लिया। हाँ, लेकिन वह तो नहीं भी ले सकता था। जो भी हो, कार्ड सेठजी के पास पहुँचा। सेठजी आये, मुझे भीतर ले गये।

एक बार मैं एक व्यक्ति के घर गया। जाते ही वह कहा, आज नहीं, किसी दूसरे दिन आइये। इसी तरह पाँच दिन गया हूँ। उस दिन जाते ही कहता है – "बाबा ! रामकृष्ण मिशन का चंदा देख रहा हूँ कि सरकारी टैक्स से भी बड़ा है।" (सभी हँसते हैं) पन्द्रह रुपया दिया था। मैंने कहा – आपने आने के लिये कहा है, इसलिए आ रहे हैं। यदि आप पहले ही कहते कि नहीं देंगे, तो मैं नहीं आता।

और एक बार एक सेठजी के घर गया। दरवान ने कहा – "सेठजी घर में नहीं हैं। घूमकर देखता हूँ, सेठजी निकले हैं। मुझे देखकर भीतर ले गये। मैंने कहा – "दरवान ने कहा कि आप घर में नहीं हैं?" उन्होंने उत्तर दिया – उसको ऐसा ही बोल कर रखा गया है।" (सभी हँसते हैं)

प्रश्न – महाराज ! आपने कहा था – जब तक विचार कर रहे हो, तब तक व्यावहारिक सत्य स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। विचार करने का अर्थ ही है, थोड़ी सत्यता – जीव-जगत की सत्यता स्वीकार करके उससे मुक्त होने का प्रयास करना।

महाराज – मैं जो कह रहा था – उत्तरकाशी में साधु लोग एक कॉलरा के रोगी को फेंककर चले गये, उससे तुम्हारा पूर्वपक्ष कहता है कि विक्षेप होगा, तो सचमुच ही विक्षेप होगा। जब ध्यान के समय ऐसे रोगी की सेवा की ओर ध्यान देना पड़ता है, तब विक्षेप तो होता ही है, उस समय जो मन्त्र जप रहा है, उससे बाधा होती है। विचारपंथियों के मतानुसार, उससे दूर जाना है। इसलिए सांसारिक कार्यों में लिप्त न होकर विचार में ही मग्न रहना अच्छा है। यह एक मत है।

प्रश्न – आप कह रहे थे, जब तक हमलोगों को भिक्षा लेने की आवश्यकता हो रही है, अपने शरीर-रक्षा के लिए प्रयास है, तब तक रोगियों की सेवा नहीं करने से तुम्हारा भाव है – देहसर्वस्व – शरीर ही सब कुछ है।

महाराज – हाँ, देहसर्वस्व हुआ। देहसर्वस्वता स्वार्थपरता है।

– और भी आपने कहा था, सेवा-भाव से देह-भाव कम हो जाता है।

महाराज – देखो, विचार के साथ व्यावहारिक जगत का – कर्म का विरोध तब होता है, जब मनुष्य ध्यान में निमग्न रहता है। जब गहन ध्यान में पहुँचता है, तब सभी इन्द्रियों को बन्द करके ध्यान में मन को एकाग्र करना पड़ता है, उस समय कर्म का विरोध होता है। वह बहुत ऊँची अवस्था है। ठाकुर जब समाधि-मग्न होते थे, तब क्या वे कार्य कर पाते थे?

– बात ही नहीं कर पाते थे।

महाराज – क्योंकि उस अवस्था में कोई कर्म नहीं होता है। सकाम कर्म भी नहीं होता है, निष्काम कर्म भी नहीं होता है। उस अवस्था में विरोध है, किन्तु उसके पहले तक कोई विरोध नहीं है। जितने दिनों तक साधक उस ऊँची अवस्था तक नहीं पहुँच जाता, उतने दिनों तक उसका विरोध नहीं है। इसके अलावा विरोध कहाँ है? जो कर्म मनुष्य को संकुचित करता है, उससे विरोध है, अर्थात् स्वार्थभाव-प्रेरित कर्म के साथ विरोध है। किन्तु नि:स्वार्थ कर्म के साथ कोई विरोध नहीं है। स्वामीजी क्या कह रहे हैं? शंकराचार्य का भी इस सम्बन्ध में स्पष्ट विचार है। उन्होंने कहा है – सकाम कर्म करते-करते यदि मन में निष्काम भाव आ जाय, तो फिर विरोध नहीं रहा।

– उन्होंने कहा था, सकाम कर्म आरम्भ करके मन में निष्काम भाव आने पर भी अगला कर्म निष्काम भाव से किये जा रहे हैं।

महाराज – वे कह रहे हैं – एक व्यक्ति ने एक यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञ करते-करते उसके भीतर की सभी कामनायें चली गयीं। किन्तु उन्होंने यज्ञ को सम्पूर्ण किया। जिस क्षण कामना चली गयी, उसी क्षण वह निष्काम कर्म हो गया। सकाम कर्म के साथ विरोध है। किन्तु निष्काम कर्म तुम्हें संकुचित नहीं कर रहा है, शरीर के साथ तुम्हें आबद्ध नहीं कर रहा है। इसीलिए निष्काम कर्म के साथ ज्ञान का विरोध नहीं है।

निदिध्यासन के साथ कर्म का स्वभावत: विरोध है। निदिध्यासन हुआ मन के परे, विचार के परे, जो सिद्धान्त है, उसमें डूब जाना। उस समय कर्म नहीं होता। साधारण या निम्न अवस्था में विरोध एक ढोंग, छल मात्र है। इसी विरोध का ढोंग करके जो मानव-सेवा हमारे लिये करणीय थी, हमलोग उससे विच्युत हो रहे हैं, पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं। यही निष्कर्ष है। विरोध कहाँ है? जहाँ मैं समाधिस्थ हो रहा हूँ। जहाँ मैं सब व्यवहार कर रहा हूँ, वहाँ विरोध नहीं है। शंकराचार्य जी भी, जहाँ विरोध है, वहाँ कह रहे हैं, वह सकाम कर्म के प्रसंग में है।

– शंकराचार्यजी के मतानुसार निष्काम कर्म द्वारा ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होगी।

महाराज – यदि ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होती है, तो उसके बाद ज्ञान में ही स्थिति होती है।

– उसके बाद ज्ञान की अन्तरंग साधना।

महाराज – अन्तरंग साधना हुई - ब्रह्माकारा वृत्ति।

– महाराज, वह तो निदिध्यासन है।

महाराज – निदिध्यासन माने ध्यान – सभी इन्द्रिय-वृत्तियों का निरुद्ध करके ध्यान करना।

– उस अवस्था में श्रवण-मनन का स्थान नहीं है?

महाराज – श्रवण-मनन के बाद निदिध्यासन है। श्रवण-मनन करने के बाद निदिध्यासन होता है।

– इसका अर्थ है कि ज्ञाननिष्ठा आने तक कर्म करना है। निष्काम कर्म के द्वारा ज्ञाननिष्ठा प्राप्त करना या चित्तशुद्धि

शेष भाग पृष्ठ १४० पर

होली विशेष

सँभलकर मनाएँ रंगों का त्यौहार होली

रचना शास्त्री

होली भारत के प्रमुख त्यौहारों में से एक है। हमारे समाज में अनेक त्यौहार महापुरुषों के जन्म से, निर्वाण से सम्बन्धित हैं, परन्तु बहुत से त्यौहार ऋतु-परिवर्तन से सम्बन्ध रखते हैं। कुछ त्यौहार व्यापारी वर्ग के लिये हैं, तो कुछ किसान वर्ग के लिए। होली का त्यौहार इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह एक ओर ऋतु-परिवर्तन की ओर संकेत करता है, तो दूसरी ओर किसानों (खेतीहरों) के लिए फसल पकने की खुशी लेकर आता है। एक ओर यह प्रह्लाद की कथा के कारण पौराणिक ऐतिहासिक महत्त्व भी रखता है, तो दूसरी ओर यह भारतीय समाज की एकात्मता को भी प्रमाणित करता है।

बसन्त की सुरभित पवन से जन-जन में उत्साह हिलोरें लेने लगता है। शीतकालीन ठिठुरन से शरीर को मुक्ति मिल जाती है। किसान की गेहूँ, जौ, चने की फसलें पक जाती हैं। ऐसे समय में किसान नए उपजे अन्न को ईश्वर को यज्ञ में समर्पित करके ही घर लाना चाहता है। इसीलिए गाँव-गाँव तथा मोहल्लों में यज्ञों के सामूहिक आयोजन किए जाते हैं। इस यज्ञ को ही होली नाम दिया गया। गेहूँ की बाली, जौ की बाली तथा चने की बूट होली की ज्वाला में भूने जाते हैं तथा परस्पर बाँटे जाते हैं। सभी एक-दूसरे को नमस्कार करते तथा गले मिलते हैं। यह त्यौहार फाल्गुन की पूर्णिमा को सूर्यास्त के बाद शुभ मुहूर्त में मनाया जाता है।

यदि हिरण्यकशिपु (दानवराज) की बहन होलिका की चिता ही होली होती, तो उसमें होले जलाकर खाने और बाँटने की प्रथा कभी न होती। क्या चिता में अन्न जलाकर भी कोई खाता है? वास्तव में पूर्णिमा को यज्ञ करके अन्न को अर्पण करने की प्रथा पहले ही शुरु हो चुकी थी। प्रह्लादजी की कथा उसमें बाद में जुड़ गई। अत: होली पर्व त्रेतायुग से भी पुराना सिद्ध होता है। वैसे भी केवल प्रह्लाद को जलाने के लिये बहन को राजा ने आदेश नहीं दिया होगा। होली का यज्ञ तो होना ही था। राजा ने अपनी बहन से यज्ञ में प्रह्लाद को लेकर सम्मिलित होने का आदेश दिया होगा। होलिका को वरदान में एक चमत्कारी दुपट्टा मिला हुआ था, जिसको आग जला नहीं सकती थी। प्रभु की कृपा से अग्नि में प्रवेश करते ही वह दुपट्टा (कवच) प्रह्लाद पर लिपट गया और होलिका से हट गया। इसीलिए होलिका तो जल गई और भक्त प्रह्लाद बच गया। इस पर राजा हिरण्यकशिपु को क्रोध आया, जो, स्वाभाविक था। अत: राजा ने स्वयं अपनी तलवार निकाली और कहा, ''अब मैं स्वयं तेरा वध करूँगा। बुला ले अपने नारायण को। बता वह विष्णु कहाँ है?'' भक्त प्रह्लाद ने सहज भाव से निर्भय होकर कहा, ''नारायण तो सभी जगह हैं। वह कहाँ नहीं हैं?'' राजा बोला, ''क्या इस स्तम्भ में भी नारायण है?'' प्रह्लाद ने कहा, ''अवश्य हैं। अवश्य हैं।'' और तभी एक भयंकर ध्वनि के साथ स्तम्भ फटा और भगवान विष्णु नृसिंह रूप में दहाड़ते हुए निकले। सभी उपस्थित जन भयभीत हो गए। भगवान नीचे से नर थे और ऊपर से सिंह। भगवान को यह रूप इसलिए धारण करना पड़ा, क्योंकि तपस्या करके हिरण्यकशिपु यह वरदान प्राप्त कर चुका था कि वह न देव से मरे न दानव से, न मनुष्य से मरे, न पशु से। न रात को मरे न दिन में। न बाहर मरे, न भीतर, न किसी हथियार से। अत: भगवान ने ऐसा रूप धरा, जिसमें वह न नर दिखें न पशु। भगवान ने दानवराज को अपने घुटनों पर रखा तथा द्वार के बीच में खड़े हो गए, जो न बाहर थे, न भीतर और संध्या का समय था, न दिन, न रात। फिर अपने नाखूनों से उसका पेट चीर दिया अर्थात् कोई हथियार प्रयोग नहीं किया। परमात्मा दुष्ट दानव को दिए हुए वचन की भी ईमानदारी से रक्षा करते हैं। सच है, भक्तों को दिये गये वचन की रक्षा भला क्यों नहीं करेंगे !

अत्याचारी राजा के मारे जाने पर भला प्रजा प्रसन्नता से उत्सव क्यों नहीं मनाएगी? इसीलिए अगले दिन प्रजा ने अपने उल्लास को व्यक्त करने के लिये रंगों को एक-दूसरे पर डाल कर, गले मिलकर, तरह-तरह की मिठाइयाँ नमकीन बाँटकर खुशी मनाई। समय बीतने पर हर रिवाज में कुछ विकार पनप जाते हैं। रंगों से लोग गुलाल पर आ गए, कीचड़ और पेंट पर आ गए। लाल गुलाबी की जगह कालिख पर आ गए। ठंढाई की जगह शराब और भाँग पर आ गए। इस प्रकार त्यौहार की पवित्रता नष्ट हो गई। आज

हमारा समाज पुन: विकसित हो चुका है। लोकतांत्रिक समाज में सभी पढ़े-लिखे तथा सभ्य होते जा रहे हैं। अत: अपनी आदतों और जीर्ण रीति-रिवाजों में भी सुधार लाना चाहिए।

होली रंगों का त्यौहार है। अत: उत्तम, शुद्ध तथा आकर्षक रंगों का ही उपयोग करना चाहिए। प्राचीन परम्परा से भी सीखना चाहिए तथा नवीन वैज्ञानिक दृष्टि को भी अपनाना चाहिए। ढाक के फूल (केशू) को अच्छे जल से उबालें। यह केसरिया रंग बहुत सुन्दर लगता है। शरीर को भी हानि नहीं पहुँचाता। इसी प्रकार गेंदे के फूलों को पीसकर घोल बनाएँ तो भी सुन्दर रंग बन जाता है। गुलाब के फूलों को पीस कर तथा उबाल कर सुन्दर गुलाबी रंग बनाया जा सकता है। कई पौधों के पत्तों से भी हरे रंग प्राप्त किए जा सकते हैं। गुलाल भी अब बहुत अच्छे प्रकार के आ रहे हैं। रेत वाले तथा घटिया गुलाल, गन्दे पेन्ट, नीली काली स्याही आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वास्तव में हमारा उद्देश्य प्रसन्नता व्यक्त करना तथा सबको प्रसन्न करना है, तो ऐसे रंग, पेंट का प्रयोग न करें, जो किसी के मन में त्यौहारों के प्रति तथा आपके प्रति घृणा उत्पन्न करे। आजकल चन्दन की डिब्बियाँ भी मिलती हैं। उनसे एक-दूसरे को चन्दन लगाकर गले मिलें, तो बहुत अच्छा लगेगा। इस त्यौहार पर लोग सम्बन्धियों के यहाँ जाते हैं। गलियों में टोली बनाकर निकलते हैं। नाचते, गाते हैं। हास्य रस के कवि-सम्मेलन तथा विनोद सभाओं के आयोजन भी किए जाते हैं। राधा-कृष्ण के रूप धारणकर रंगों से होली खेलने के भी कार्यक्रम होते हैं। रासलीला के आयोजन भी कराए जाते हैं। रंग हो, उमंग हो, मस्ती हो, प्रेम हो, पर घृणा और द्वेष न हो।

हमारा कर्तव्य है कि पिछड़ी बस्तियों में जाकर गले मिलें, गुलाल चन्दन लगाएँ। उनकी बनाई तथा दी गई नमकीन, मिठाई ग्रहण करें। होली पर समाज की एकात्मा का सन्देश दें। उनके पास जाकर मेल-मिलाप करें और भारत माता की जय का, भारतीय संस्कृति का गुणगान करें। ○○○

('सनातन संदेश' से साभार)

जो चाहे कल्यान, छोड़ भोग सन्धान

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

संत अबु हफ़स हदाद इबादत के बड़े पाबन्द थे। एक दिन उनकी दृष्टि एक बांदी पर पड़ी, तो वे उस पर आसक्त हो गए। रात को सोते समय उसके चिन्तन से नींद नहीं आई। सुबह नहाकर इबादत करने लगे, तो सब कुछ भूल गए और शुद्ध अन्त:करण से इबादत करते रहे। एक बार एक जादूगर से मुलाकात होने पर सहसा बांदी का विचार आ गया। उन्होंने सोचा कि यह करामाती बांदी को उनके बस में लाने में सहायक हो सकता है। उन्होंने जादूगर से जब अपने मन की बात बताई, तो वह बोला, "छी ! छी ! एक ओर तो आप इबादती हैं और दूसरी ओर एक बांदी पर आसक्त हैं। ऐसा बुरा काम मुझसे नहीं होगा।" संत हदाद ने जब मिन्नतें की, तो इस बात पर राजी हुए कि चालीस दिन तक उस बांदी को भूलना होगा। संत ने स्वीकार किया। बांदी को भूलकर वे इबादत, नमाज, रोजा सब करते रहे। बांदी की याद उन्हें कभी नहीं आयी।

इकचालीसवें दिन जादूगर के पास गए और उससे पूछा, "क्या अब मेरी इच्छा पूरी होगी?" जादूगर बोला, "पहले यह बताएँ कि क्या आपने इबादत नमाज आदि को छोड़कर कोई नेक काम किया है?" संत सोचने लगे, फिर बोले, "हाँ एक दिन रास्ते में मुझे जब पत्थर और काँच दिखाई दिया, तो मैं उन्हें बीन-बीनकर दूर झाड़ी में फेंक आया था।" "बस इस नेक काम के कारण मैं आपका काम करने में कामयाब नहीं हो सका।" जादूगर के इन शब्दों ने उनकी आँखें खोल दीं। सन्त हदाद सोचने लगे, "एक छोटा-सा काम जब खुदा की दृष्टि में ईमान का काम होता है, तब पराई स्त्री पर आसक्त होकर उसकी इच्छा करना क्या उसकी इच्छा के विरुद्ध नहीं होगा? अगर प्रेम-आसक्ति को भूलकर अल्लाह की ओर जितना बढ़ता जाऊँगा, उतना ही जीवन में खुशी पाऊँगा।"

धर्माचरण में काम-वासना के लिये कोई स्थान नहीं है। तृष्णा और आसक्ति शरीर को दीमक के समान खोखला बना देती हैं। इसलिए इन्द्रियों पर अंकुश लगाना जरूरी है। सच्चे संत भोगों से दूर रहकर धर्म-साधना में रत रहते हैं। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३९)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

बहरमपुर की ओर

मार्ग में नपुकुर, बेलडांगा आदि गाँवों में अन्न तथा जल का अभाव देखकर मेरा हृदय अत्यन्त विचलित होने लगा और उठते-बैठते, मार्ग में चलते हुए भगवान को दयामय कहने में भी कुण्ठा-बोध होने लगा। मेरी समझ में नहीं आता था कि दयामय भगवान के राज्य में छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ किस पाप के फल से बिना-खाये मर रहे हैं ! ऐसे दयामय का राज्य छोड़कर भाग जाने की इच्छा हुई। उसी समय मैंने अपने मन में दृढ़ संकल्प किया कि मार्ग के किसी भी गाँव में 'योगवाशिष्ठ' मिल जाने पर, उसे पढ़े बिना मैं उस गाँव से नहीं निकलूँगा। मैं जिस गाँव में भी जाता, वहाँ 'योगवाशिष्ठ' के बारे में पूछता।

दादपुर से चलकर सबसे पहले नपुकुर पहुँचा और वहाँ जानकीनाथ लाहिड़ी नामक एक भक्त ब्राह्मण के घर रात्रिवास किया। चाँदनी रात में बातें करते समय लाहिड़ी महाशय की श्रद्धा-भक्ति तथा शिष्टाचार देखकर मुझे विशेष तृप्ति मिली।

उनसे पता चला कि जमसेरपुर के बाबू लोग उस गाँव के जमींदार हैं । फिर एक ग्रामांचल में दो उत्तर-भारतीय पहलवानों को देखकर मैंने लाहिड़ी महाशय से पूछा, ''ये लोग यहाँ किसलिये हैं?'' लाहिड़ी महाशय बोले, ''कुछ दिनों पूर्व बाबुओं के गुमास्ता के अत्याचार से पीड़ित जनता – दिन-दहाड़े उस गुमास्ता को कचहरी से खींचकर खुले मैदान में ले गयी और पीट-पीट कर उसे मार डाला। कहीं इस दुर्घटना की पुनरावृत्ति न हो, इसी आशंका से जमींदार बाबुओं ने इन दो पहलवानों को नियुक्त किया है ।''

रात को अनेक किसान एक साथ मिलकर, खूब जोर के स्वर में एक गीत गाने लगे। मैं उस गीत के एक भी शब्द का अर्थ समझ नहीं सका। मैंने अपने जीवन में पहली बार इस तरह का गीत सुना था। पूछने से पता चला कि कलकत्ता-अंचल के गाजन-संन्यासियों के समान ही, इस अंचल के भी बहुत-से किसान उसी प्रकार नील का व्रत करते हैं और 'बोलान' गाते हैं। किसान लोग स्वयं ही प्रतिवर्ष ये गीत बनाते हैं। एक लड़के से थोड़ा-सा 'बोलान' सुनाने को कहने पर उसने बताया –

आम खाया, जामुन खाया, गुठली फेंकी झाड़ी में;
सात गाजन घूमकर आया, ढोल बजाता काठी से !

अगले दिन सुबह लाहिड़ी महाशय खूब आग्रह करने लगे कि एक दिन और ठहर जाऊँ । जब तक ये ब्राह्मण मेरे पास रहे, तब तक मैं उन्हें छोड़कर नहीं जा सका। परन्तु वे ज्योंही अपना 'संध्या-वन्दन' करने बैठे, मैं भी 'दुर्गा श्रीहरि' बोलकर निकल पड़ा । परन्तु ब्राह्मण की उन छलछलाई आँखों ने मुझे इतना आकृष्ट कर लिया था कि रास्ते से ही बारम्बार उनके घर लौट जाने की इच्छा होने लगी; परन्तु उधर न जाकर, मैं बेलडांगा की ओर चलता रहा।

बेलडांगा

बेलडांगा एक बड़ा गाँव है। वहाँ हाट-बाजार, स्कूल, डाकघर आदि सब हैं और बहुत-से लोगों का निवास है। वहाँ एक रेशम का कारखाना भी है। इस जिले के लोग इसे 'बानक' कहते हैं। कासिमबाजार की महारानी स्वर्णमयी इस गाँव की जमींदार हैं। बचपन से ही हमलोग महारानी स्वर्णमयी के मुक्तहस्त से दान की बातें सुनते आये थे ; परन्तु वहाँ जाकर खेदपूर्वक सुना कि इस अंचल की प्रजा ने उनके नायब गुमास्ता के भयंकर अत्याचार के कारण विद्रोह करके लगान चुकाना बन्द कर दिया है।

वहाँ मैंने एक ब्राह्मण के घर में अतिथि होकर एक रात निवास किया। वहाँ 'विष्णुपुराण' पाकर मैंने उसी को पढ़ना आरम्भ किया। इसी बीच उस गाँव के एक प्रमुख निवासी आकर जमींदार के लोगों के अत्याचार की बातें सुनाने लगे। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे महारानी स्वर्णमयी जैसी उदार स्वभाव की जमींदार के साथ विवाद न बढ़ाकर, समझौते के द्वारा निपटारा कर लें और साथ ही यह भी कहा, ''आप लोग यदि देश के जमींदारों के साथ विवाद करेंगे, तो जमींदारों को जो क्षमता मिली हुई है, भविष्य में वह भी नहीं रह जाएगी। इससे क्या आप लोगों का गौरव बढ़ेगा?''

स्नान करने के लिये बेलडांगा की कचहरी में जाकर देखा कि वहाँ एक वृद्ध नायब बैठे हुए हैं । मैंने उनके साथ

परिचय आदि किये बिना, दूर से ही उनके पास बैठे दरबान से कहा, ''प्रजा पर अधिक अत्याचार करने पर नपुकुर के गुमास्ते की जो दुर्दशा हुई है, यहाँ भी उसकी पुनरावृत्ति हो सकती है।''

इसके बाद, उस गाँव में जितने भी प्रमुख लोग थे, वे सभी आये और उन ब्राह्मण के घर से मुझे ले जाकर एक सभा की। मुझे काशिमबाजार के महाराजा का गुप्तचर समझकर उन लोगों ने मुझे अपमानित करना आरम्भ किया। तभी नपुकुर के जानकी लाहिड़ी द्वारा मेरे विषय में सब कुछ बताते ही वे लोग खेदपूर्वक पश्चात्ताप करने लगे।

बेलडांगा में मैं जिन ब्राह्मण के घर में ठहरा था, उन्होंने बताया कि बेलडांगा से बहरमपुर चौदह मील दूर है। इस चौदह मील के रास्ते पर कोई भी गाँव नहीं है। उनके बड़े भाई भाबता बाजार की एक कपड़े की दुकान में काम करते थे। वे बोले कि दोपहर के समय मैं उन्हीं के यहाँ भोजन करूँ।

भाबता

बेलडांगा से भाबता की ओर जाने के मार्ग में देखा कि एक पेड़ के नीचे कुछ able bodied (सक्षम शरीरवाले) अकाल-पीड़ित लोग, जो रास्ते की मिट्टी काट रहे थे, मजदूरी में कटौती के कारण वे लोग डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के ओवर्सियर तथा सब-ओवर्सियर के साथ लड़-झगड़ रहे हैं।

मेरे अचानक ही वहाँ पहुँच जाने और अकाल-पीड़ितों के पक्ष में बहुत-कुछ बोलने पर ओवर्सियरों ने अपना हठ छोड़ दिया। उन लोगों ने उन मजदूरों की समुचित मजदूरी का हिसाब करके उसे चुका दिया। इसी प्रकार, मैंने जहाँ कहीं भी दुर्दशाग्रस्त लोगों के साथ अन्याय होते देखा है, वहीं उसके प्रतिकार का प्रयास किया है।

इसके बाद मैं भाबता पहुँचकर उन ब्राह्मण की दुकान में अतिथि हुआ। वहाँ बाजार के खूब निकट से ही गंगाजी बहती हैं। स्नान हेतु वहाँ जाकर, भाबता के पुराने उच्च माध्यमिक पाठशाला के प्रधानाध्यापक के साथ मेरी जान-पहचान हुई। उन्होंने कहा कि वे मुझे पढ़ने के लिये 'नव्य-भारत' पत्रिका देंगे। भोजन आदि के उपरान्त मैं भाबता की पाठशाला में गया और वहाँ विश्राम करते हुए 'नव्य-भारत' पढ़ता रहा।

अपराह्न में बहुत-से ब्राह्मण-छात्र पण्डितजी के पास पढ़ने आये। वे सभी महुला गाँव के निवासी थे। उन्हें विभिन्न विषयों की शिक्षा देते-देते संध्या हो गयी। पण्डितजी बोले, ''अनजानी जगह में रात के समय न जाकर दिन में जाना अच्छा होगा।'' अत: रात मैंने पाठशाला में ही बितायी।

शाम के समय मुक्तागाछा के श्रीयुत जगत्-किशोर आचार्य-चौधरी के ममेरे भाई श्रीयुत रजनीकान्त सान्याल के साथ मेरी थोड़ी देर बातचीत हुई। वे जान गये कि मैं बड़े सबेरे बहरमपुर की ओर रवाना हो रहा हूँ।

सुबह जब मैं हाथ-मुँह धोकर बहरमपुर जाने की तैयारी कर रहा था, तभी सहसा मुझमें एक ऐसा भावान्तर उपस्थित हुआ, जिसे शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता। मैं ज्योंही उठने लगा, त्योंही सुना, मानो कोई कह रहा था, कहाँ जाएगा? तेरे लिए यहाँ पर ढेर सारे कार्य हैं। गंगा का तट है, ब्राह्मणों का गाँव है, भिक्षा की सुविधा है; तुझे यहीं रहना होगा। यह अशरीरी वाणी मुझे तीन बार सुनाई दी। इसके बाद जब मैं पुन: उठने को प्रस्तुत हुआ, तभी मानो किसी ने मेरी कमर पकड़कर नीचे की ओर बैठा दिया। ऐसा तीन बार हुआ।

पण्डितजी मेरे बगल में ही बैठे थे। मैंने भीतर की बात प्रकट किये बिना ही, इसी अंचल में कुछ दिन रहने के अपने संकल्प से उन्हें अवगत कराया। सुनकर वे बोले, ''अच्छा है, तो फिर आइये, ठीक से बैठिये।'' भाबता में उन दिनों मिठाई तथा मोदीखाने की मात्र कुछ ही दुकानें थीं। उन्हीं दुकानों के सामने जाकर मेरे बैठने के बाद पाठशाला के छात्रगण और बहुत-से हिन्दू-मुसलमान मुझे घेरकर खड़े हो गये।

तभी रजनी सान्याल ने आकर मुझसे पूछा, ''क्यों महाराज, आपकी तो आज बहरमपुर जाने की बात थी !'' मैं बोला, ''नहीं महाशय, मेरा जाना नहीं हुआ। कुछ दिन मैं इसी अंचल में रहूँगा।'' यह सुनकर उन्होंने महुला के अपने चाचा श्रीयुत सूर्य सान्याल के घर माँ-अन्नपूर्णा का प्रसाद ग्रहण करने का अनुरोध किया।

अन्नपूर्णा-पूजा की बात सुनकर मैं विशेष रूप से आनन्दित हुआ। यह शुभ दिन यदि मार्ग में चलते हुए बीत जाता, तो फिर मेरे शोक की सीमा न रहती। इस भीषण अन्नकष्ट के बीच क्या अभावग्रस्त तथा पीड़ित जनसाधारण का अन्नकष्ट दूर करने हेतु ही माँ-अन्नपूर्णा ने मुझे यहाँ रोक लिया है? इस बात का मैंने अपने हृदय में भलीभाँति अनुभव किया और मन-ही-मन माँ से बोला, ''अब तुम्हारे ही साथ मेरा हिसाब-किताब होगा।''

महुला

भावता ग्राम में अब क्षण भर का भी विलम्ब किये बिना मैंने गंगास्नान किया। इसके बाद तेजी से चलकर सूर्य सान्याल के चण्डी-मण्डप में जा पहुँचा। देखा कि पुरोहित

तथा सान्याल महाशय माँ के पूजन की व्यवस्था कर रहे हैं। रजनी सान्याल ने मुझे भेजा है, यह सुनकर उन्होंने बैठने के लिये मुझे एक कुशासन दिया।

दुर्गा-सप्तशती पाठ के विषय में पूछने पर वे बोले कि उनकी पूजा में सप्तशती का पाठ नहीं होता। परन्तु मेरे लिये उन्होंने एक 'सप्तशती' मँगवा दी। मैंने उसी से पाठ आरम्भ कर दिया। इस चण्डी-पाठ के समय महुला के अनेक निमंत्रित ब्राह्मण वहाँ आकर मेरा पाठ सुनने लगे।

माँ का प्रसाद पाने के बाद, अपराह्न के समय बहुत-से ब्राह्मण तथा उनके बच्चे आकर मेरे पास बैठे। उस समय गाँव के छोटे-बड़े बहुत-से ब्राह्मणों के सिर पर 'शिखा' न देखकर मैं थोड़ा विस्मित हुआ। संध्या के पूर्व मैं उन्हें साथ लेकर गंगा के किनारे गया और गायत्री का आवाहन तथा विशुद्ध उच्चारण के साथ गायत्री-मंत्र की आवृत्ति सिखाने के बाद उसका एक सामान्य अर्थ भी उन लोगों को समझा दिया। मैंने उन्हें बताया कि शिखा और सूत्र में ही आर्यों का वास्तविक परिचय निहित है और ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र सभी को 'शिखा' रखने का उपदेश दिया।

संध्या के बाद सान्याल महाशय के चण्डी-मण्डप में आकर सारी रात माँ के पास बैठा रहा। भोर में करीब चार बजे, किसानों की एक टोली पाँवों में पाजेब पहने वहाँ आयी और थिरक-थिरक कर नाचने के साथ 'तारे नारे नारे गो, एसो गो माँ सरस्वती' आदि वन्दना करने के बाद 'बोलान-गीत' गाने लगी। किसानों द्वारा टोली बनाकर नृत्य करना तथा बोलान-गीत गाना, यहीं मैंने पहली बार देखा। उस गीत के माध्यम से देश के अन्न-कष्ट तथा जल-कष्ट की बात अभिव्यक्त की गयी थी –

अन्न के बिना प्राण गया रे !

जल के बिना प्राण गया रे ! आदि, आदि ।

उसे सुनते ही मैंने वह पूरा बोलान-गीत लिख लिया। बाद में दुर्भिक्ष के विशेष विवरण के साथ मैंने किसानों का वह गीत भी लिखकर मठ में भेज दिया था। किसानों के विदा लेते समय, सान्याल महाशय ने उन्हें धोती के छोर में भर-भरकर गुड़-मुरमुरे दिये और बताया कि ऐसी ही प्रथा चली आ रही है। उसी रात एक ब्राह्मण, अगले दिन की भिक्षा के लिये मुझे निमंत्रण दे गये। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १०३ का शेष भाग

करने के पहले ही उन्होंने मुझे प्रणाम कर दिया। मैंने उन्हें प्रति-प्रणाम किया। उन्होंने फिर मुझे प्रणाम किया। मैंने सिर झुकाकर प्रणाम किया, तो उन्होंने भी वैसा ही किया। मैंने सोचा कि कहीं यह श्रृंखला बढ़ती ही न जाये, अत: मैंने मन-ही-मन उनको प्रणाम अभिनन्दन करके सीढ़ियों से ऊपर ले जाकर बॉक्स में बैठा दिया। एक सेवक को उनके लिये पंखा झलने की व्यवस्था करके, शरीर की अस्वस्थता के कारण मैं घर लौट आया।''[९]

केशवचन्द्र सेन को श्रीरामकृष्ण ने अपने प्रणामास्त्र से ही वश में किया था। श्रीरामकृष्ण कहते हैं – ''अच्छा, केशव सेन इतना कैसे बदल गया? बताओ तो? परन्तु यहाँ बहुत आता था। यहीं नमस्कार करना सीखा था। एक दिन मैंने कहा – 'साधुओं को इस तरह से नमस्कार नहीं करना चाहिए।''[१०] १ जनवरी, १८८१ को केशवचन्द्र सेन दक्षिणेश्वर में आकर ठाकुर का चरण-स्पर्श कर भूमिष्ठ होकर प्रणाम करते हैं और ठाकुर भी भूमिष्ठ होकर प्रति-नमस्कार करते हैं।[११]

ऐसे कितने दृष्टान्त हैं, जिसकी विशद चर्चा यहाँ सम्भव नहीं है। देवेन्द्र ठाकुर को भी ठाकुर ने कई बार प्रणाम किया था। श्रीरामकृष्ण जब भी किसी बड़े व्यक्ति से मिलने जाते, तो पहले वे स्वयं प्रणाम करते। उनमें लेशमात्र भी अहंकार नहीं था। वे अपने को दासानुदास मानते थे। इस प्रकार श्रीरामकृष्ण ने इन लोगों को अपने प्रणाम अस्त्र द्वारा ही इनके अहंकार को निर्मूल किया। इनमें निहित प्रेम, सद्भावना और भक्ति-भाव को प्रकट किया और समस्त संसार के मानवों को एकसूत्र में बाँधने का स्नेह, प्रेम और विनम्रताजनित प्रणाम रूपी अध्यस्त्र का प्रक्षेपण किया। ○○○

सन्दर्भ-सूत्र – * श्रीरामकृष्णवचनामृत २/१२२५, **१.** अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द, पृष्ठ ४५, **२.** श्रीरामचरितमानस १/१२१, **३.** श्रीमद्भगवद्गीता ४/८, **४.** अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द, पृष्ठ ४५-४६, **५.** गीता-४/३४, **६.** अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द, पृष्ठ ४५-४६, **७.** वही, पृष्ठ -४६, **८.** श्रीरामकृष्णदेव जैसा हमने उन्हें देखा, पृष्ठ ३८३, **९.** वही, पृष्ठ - ३८३-३८४, **१०.** श्रीरामकृष्णवचनामृत, १/३१८, **११.** श्रीरामकृष्णवचनामृत, २/११८०.

रमण महर्षि की प्रियभक्त गाय : लक्ष्मी

श्रीधर कृष्ण, ईआरपी कंसल्टेंट, चेन्नई, तमिलनाडु

भगवान श्रीरमण महर्षि का जानवरों के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे उनसे बहुत प्रेम करते और उनकी देखभाल करते थे। एक रात्रि, तमिलनाडु के एक छोटे शहर में एक दीन ग्रामीण श्री अरुणाचलम पिल्लई ने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उसने देखा कि उसको निर्देश दिया जा रहा है कि वह अपनी गाय की होनेवाली बछिया को, अरुणाचला के ऋषि श्रीरमण महर्षि को भेंट कर दे। उस समय उसकी गाय गर्भवती थी। कुछ दिनों के उपरान्त, उसकी गाय ने एक सुन्दर बछिया को जन्म दिया। इससे उसके भाग्य में सुधार हुआ और उसने न केवल वह बछिया, बल्कि उसकी माँ (गाय) को भी श्रीरमण महर्षि को अर्पित करने का निर्णय लिया।

श्रीरमण महर्षि और लक्ष्मी

दिसम्बर, १९२६ के एक शुक्रवार के दिन दोपहर में अरुणाचलम पिल्लई श्रीरमणाश्रम में आया। रमण महर्षि के कुछ भक्त वहाँ उपस्थित थे। पिल्लई ने उनलोगों के सामने अपनी इच्छा प्रकट की। उनलोगों ने रमण महर्षि से पिल्लई के अनुरोध को स्वीकार करने का आग्रह किया। लेकिन रमण महर्षि ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। अरुणाचलम ने कहा, ''मैं यह दान भगवान श्रीरमण महर्षि के चरणों में समर्पित कर चुका हूँ। मेरा मस्तक काट देने पर भी मैं इसे वापस नहीं ले जाऊँगा।'' रमण महर्षि के एक भक्त रामनाथन गाय और उसकी बछिया की देखभाल करने के लिए तैयार हो गए। रमण महर्षि और बछिया ने पहली बार एक-दूसरे को देखा, वे दोनों एक-दूसरे को ऐसे देखने लगे, जैसे एक माँ और एक बच्चा एक-दूसरे को देख रहे हों। रमण महर्षि और बछिया दोनों की आँखों में परस्पर विशेष प्रेम और सम्बन्ध प्रकट हुआ।

रामनाथन आश्रम के विविध सेवाकार्यों में व्यस्त था, इसीलिए एक वर्ष पश्चात् उसने गाय और बछिया की देखरेख का भार एक अन्य व्यक्ति पशुपति अय्यर को सौंप दिया। पशुपति अय्यर एक दिन गाय और बछिया को आश्रम में ले आया और बछिया ने अविलम्ब रमण महर्षि को पहचान लिया। वे दोनों बहुत देर तक एक-दूसरे को देखते रहे और बछिया अनिच्छा से पशुपति अय्यर के साथ शहर लौट आई। रमण महर्षि उसे 'छोटी लड़की' कहते थे। बछिया शहर में रहती, किन्तु प्रतिदिन वह रमण महर्षि से मिलने आश्रम जाने लगी। रमण महर्षि ने उसका नाम 'लक्ष्मी' रखा था, क्योंकि शुक्रवार के दिन उसका जन्म हुआ था और उनके पास भी उसे शुक्रवार के दिन ही लाया गया था।

१९३० ई. की घटना है। एक दिन लक्ष्मी रमण महर्षि से मिलने बरामदे में आई। उन दिनों वह गर्भवती थी। दोपहर का समय था। भोजन करने के उपरान्त रमण महर्षि समाचारपत्र पढ़ रहे थे। वह उनके निकट आयी और समाचारपत्र को चाटने लगी। उन्होंने उसे देखा और कहा, ''लक्ष्मी, थोड़ा रुको !'' लेकिन लक्ष्मी नहीं रुकी और समाचारपत्र को चाटती रही। रमण महर्षि ने समाचारपत्र को एक किनारे रख दिया और लक्ष्मी के सींग के पीछे अपना हाथ लगाया और लक्ष्मी के सिर पर अपना मस्तक रख दिया। वे दोनों बहुत लम्बे समय तक इस अवस्था में रहे। कई भक्त इस घटना को देख रहे थे। तदुपरान्त रमण महर्षि ने अपने एक सेवक से कहा, ''क्या तुम जानते हो कि लक्ष्मी ऐसी क्यों थी? वह 'समाधि' में थी।'' लक्ष्मी की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी। उसकी दृष्टि रमण महर्षि पर अटकी हुई थी। कुछ समय उपरान्त रमण महर्षि ने लक्ष्मी से पूछा, ''लक्ष्मी, तुम्हें कैसा अनुभव हो रहा है?'' वह रमण महर्षि को अपना पूँछ दिखाना नहीं चाहती थी। इसीलिए वह पीछे की ओर चलती हुई बरामदे से बाहर चली गयी। इसके चौथे दिन उसने एक बछड़ा को जन्म दिया।

एक दिन लक्ष्मी शहर से आश्रम आयी और उसने आँसू बहाना आरम्भ कर दिया तथा रमण महर्षि के चरणों पर आराम करने से अनिच्छा प्रकट की। रमण महर्षि ने किसी

तरह उसे शहर वापस जाने के लिए सहमत कर लिया। उसी रात उसने एक अन्य बछड़ा को जन्म दिया। लक्ष्मी के बछड़ा जन्म देने की खुशी में अगले दिन रमण महर्षि ने आश्रम में खीर बनवाकर बाँटा। पशुपति अय्यर ने रमण महर्षि से कहा कि लक्ष्मी और उसके बछड़े को उनके साथ आश्रम में रखना अच्छा होगा और लक्ष्मी उनका सान्निध्य पाने के लिए लालायित भी है। आश्चर्यजनक रूप से, रमण महर्षि लक्ष्मी को आश्रम में रखने के लिए सहमत हुए। इसके पूर्व वे लक्ष्मी को आश्रम में रखने के लिए किसी भी तरह से सहमत नहीं हो रहे थे। इसके साथ-ही-साथ उन्होंने लक्ष्मी तथा बछड़े हेतु एक आश्रय का निर्माण करने का भी सुझाव दिया।

लक्ष्मी जब स्थायी रूप से आश्रम में रहने लगी, तब कई अन्य भक्तों ने भी आश्रम के लिए गाय दान में देने की इच्छा प्रकट की। रमण महर्षि ने गोशाला निर्माण की योजना बनाई। रमण महर्षि ने कहा था, ''जिस दिन गोशाला के लिए भूमिपूजन किया जानेवाला था, उस दिन लक्ष्मी कितनी उल्लसित थी और आकर मुझे कार्यक्रम में ले गयी थी।''

गोशाला के गृहप्रवेश के दिन यह निश्चय किया गया था कि नये गोशाला में पहला चरण लक्ष्मी का पड़ेगा तथा उसके बाद अन्य गाय-बछड़े उसमें प्रवेश करेंगे। लक्ष्मी को स्नान कराकर अच्छी तरह से सजाया गया। कार्यक्रम के बीच में ही लक्ष्मी किसी तरह वहाँ से बाहर चली आयी और रमण महर्षि के सामने आकर बैठ गयी। वह वहाँ तब तक बैठी रही, जब तक वे उसके साथ गोशाला में नहीं आये। इस तरह रमण महर्षि ने गोशाला में पहला चरण रखा। तदुपरान्त लक्ष्मी का चरण गोशाला में पड़ा। उसके पीछे-पीछे अन्य गायों ने गोशाला में प्रवेश किया। रमण महर्षि प्रतिदिन गोशाला में जाते थे। लक्ष्मी का कोई भी दिन ऐसा नहीं था, जब उसने रमण महर्षि के सत्संग के बिना दिन व्यतीत किया हो। दिन में किसी-न-किसी समय वह रमण महर्षि का दर्शन करती ही थी। लक्ष्मी गोशाला से स्वेच्छानुसार बरामदा में उनके पास चली आती थी, चाहे उस समय बरामदा भक्तों से भरा हुआ ही क्यों न हो।

आश्रम की गोद ली हुई बेटी लक्ष्मी आश्रम के वातावरण में रच-बस गई। अल्प समय में ही वह रमण महर्षि की प्रियपात्र बन गई और आश्रम में हर विशेषाधिकार का आनन्द लेने लगी। लक्ष्मी की निर्दोष प्रकृति उसके भोजन की आदतों में विशेष रूप से परिलक्षित होती थी। उसे ऐसा लगता था कि आश्रम का अधिकांश भोजन उसके लिए ही है और वह चाहती थी कि रमण महर्षि उसे अपने हाथों से खिलाए।

एक दिन, एक व्यक्ति बहुत सारे पहाड़ी केले को लेकर आश्रम में आया। लक्ष्मी उसको देख रही थी और पीछे से घात लगाकर बैठ गयी। वह व्यक्ति नहीं जानता था कि गाय उस पर आक्रमण की योजना बना रही है। लक्ष्मी तेजी से दौड़ती हुई आयी तथा केले का एक विशाल गुच्छा उसके हाथों से छीन कर खाने लगी। उस व्यक्ति ने कहा कि वह केला रमण महर्षि के लिए लाया था परन्तु केलों को गाय खा गयी। भक्तों ने उससे कहा कि इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है, लक्ष्मी का खाना रमण महर्षि को देने के ही बराबर है।

गर्मी के मौसम में एक बार आश्रम में बहुत कम चारा उपलब्ध था, इससे लक्ष्मी पतली हो गई। रमण महर्षि को जब लगा कि लक्ष्मी को खाने के लिए पर्याप्त चारा नहीं मिल रहा है, तब एक शाम उन्होंने भोजन करने से मना करते हुए कहा कि यह हिस्सा लक्ष्मी को दिया जाना चाहिए। यह सुनकर रसोइया ने सुबह के बचे हुए ३-४ इडली लक्ष्मी को दे दिया।

एक दिन, लक्ष्मी बरामदे में आई और रमण महर्षि के कानों में कुछ फुसफुसाई। वे प्रबन्धक के पास गये और पूछा, ''लक्ष्मी को नाश्ते में उसके हिस्से की इडली क्यों नहीं खिलाई गई? क्या यह सत्य है कि उसे इडली के बदले उपमा दी गयी है?'' प्रबन्धक ने उत्तर दिया – हाँ, यह सत्य है, क्योंकि इडली कम बची थी, इसलिए उसे उपमा दी गई थी और उसने उपमा खाने से मना कर दिया। रमण महर्षि ने प्रबन्धक को रसोईघर में से लक्ष्मी के लिए कुछ इडली लाने का निर्देश दिया।

रमण महर्षि के प्रति लक्ष्मी की भक्ति विविध प्रकारों से अभिव्यक्त होती थी। प्रतिदिन सुबह भगवान को देखे बिना वह दूध नहीं देती थी।

एक बार रमण महर्षि ने कहा था – लक्ष्मी को देखो, वह असाधारण रूप

श्रीरमण महर्षि के चरणों में प्रणाम करती हुई लक्ष्मी

से व्यवहार करती है। वह प्रतिदिन मेरे पास आती है और अपना सिर मेरे पैरों पर रखती है।

पोंगल के अगले दिन, आश्रम में माट्टू पोंगल मनाया जाता था। इस दिन नन्दी, गाय, बैलों और भैंसों की विशेष पूजा की जाती है। सभी को उबले हुए मीठे चावल दिये जाते हैं और पवित्र मन्त्र-जाप (स्तोत्रपाठ) से उनकी प्रशंसा की जाती है। ऐसे सभी त्योहारों के दिन लक्ष्मी को लाल गुलाब, पवित्र तुलसी और फूलों की माला से सजाया जाता था। आश्रम में वह एक रानी की तरह रहती थी।

लक्ष्मी नया बछड़ा जन्म देने के कुछ मिनटों के उपरान्त अपनी गोशाला से चलकर बरामदा में आकर रमण महर्षि के सामने खड़ी हो जाती थी। वे उससे बातें करते और कहते, ‘‘लक्ष्मी, तुम यह कहने आई हो कि तुमने बछड़ा को जन्म दिया है। ठीक है, मैं गोशाला में नये बछड़े को देखने आऊँगा।’’ लक्ष्मी आश्रम में रमण महर्षि के एक विशेष भक्त के रूप में निवास करती थी। जब भी लक्ष्मी रमण महर्षि के पास आती, तब वे उसकी ओर ध्यान देते, उसको थपथपाते तथा उसे केला, चावल इत्यादि खाने को दिया करते थे। जिस अधिकार और विशेष प्रेमवश लक्ष्मी रमण महर्षि के समीप जाती थी, उससे अनेक भक्तों ने यह अनुमान लगाया कि हो-न-हो इन दोनों के बीच पूर्व जन्मों में कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य रहा होगा। लक्ष्मी कई मनुष्यों से भी अधिक बुद्धिमान प्रतीत होती थी। लक्ष्मी ने नौ बछिया-बछड़े को जन्म दिया था, जिनमें से चार रमण महर्षि के जन्मदिन में ही जन्में थे। श्री कुञ्जू स्वामी ने रमण महर्षि से कहा कि यह बहुत सौभाग्य की बात है कि लक्ष्मी ने आपके जन्मदिन पर बछड़ा को जन्म दिया है। उन्होंने उसको टोकते हुए कहा, इसमें सुधार करो कुञ्जु स्वामी ! इस प्रकार कहो कि मेरा जन्मदिन उस दिन मनाया जा रहा है, जिस दिन लक्ष्मी ने बछड़ा को जन्म दिया है।

१७ जून, १९४८ को लक्ष्मी बाईस वर्ष की आयु में बीमार हुई। नहीं तो, वह सदा स्वस्थ और ऊर्जावान रहती थी। १८ जून, १९४८ ई. को लक्ष्मी बहुत अधिक बीमार हो गयी। ऐसा लगने लगा कि वह किसी भी तरह से आज का दिन पार नहीं कर पायेगी। आज शुक्रवार था, इसलिए लक्ष्मी को हल्दी, कुमकुम का टीका लगाया गया था, उसके गले में फूलों की माला थी। वेंकट उसको पंखा से हवा कर रहे थे। गोशाला को खाली कर दिया गया था। लक्ष्मी को एक बिस्तर दिया गया था, जिस पर वह सो सके। श्रीमती नगमा रमण-द्वादशाक्षरी, रमण-स्तोत्र इत्यादि का पाठ करने लगीं और ऐसा लगा कि लक्ष्मी उन्हें काँन खोलकर सुन रही है।

प्रतिदिन की भाँति रमण महर्षि ९.४५ बजे लक्ष्मी को देखने आये। वे उसके पास बैठ गये और अपने दोनों हाथों से लक्ष्मी का सिर उठा लिया। वे अपने एक हाथ से धीरे-धीरे उसका चेहरा, गला को सहलाने लगे। वे अपना बायाँ हाथ लक्ष्मी के सिर पर रखकर, दाहिने हाथ को गले से नीचे हृदय तक फेर रहे हैं। वे दोनों लगभग आधे घण्टे तक एक-दूसरे को देखते रहे। कुछ समय पश्चात् वे वहाँ से चले गये। ११.३० बजे लक्ष्मी ने शरीर का त्याग कर दिया। दस मिनट के उपरान्त रमण महर्षि गोशाला में आये और कहा कि सब समाप्त हो गया। रमण महर्षि लक्ष्मी का सिर अपने दोनों हाथों से उठाकर ‘लक्ष्मी’, ‘लक्ष्मी’ कहने लगे। रमण महर्षि ने किसी तरह अपने आँसू सम्हालते हुए कहा कि लक्ष्मी के कारण ही हमारा आश्रम आज यहाँ तक पहुँचा है। उन्होंने उपस्थित भक्तों से कहा – तुम लोगों ने ध्यान दिया। कल तक लक्ष्मी का बायाँ कान ऊपर की ओर था। आज करवट बदल देने के कारण लक्ष्मी का दाहिना कान ऊपर की ओर हो गया। वाराणसी में जिसकी भी मृत्यु होती है, भगवान शिव उसके दाहिने कान में तारक-ब्रह्ममन्त्र देकर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। रामकृष्ण कह रहा था कि लक्ष्मी के लिए अवश्य ही एक मन्दिर का निर्माण होना चाहिए।

आश्रम परिसर में ही लक्ष्मी का अन्तिम संस्कार किया गया। कालोपरान्त लक्ष्मी की मूर्ति बनायी गई और एक मन्दिर का निर्माण किया गया।

श्रीरमणाश्रम में लक्ष्मी का मन्दिर

धन्य है यह गाय लक्ष्मी ! जिसने भगवान रमण महर्षि का सत्संग, उनका स्नेह-प्रेम प्राप्त किया। भगवान रमण महर्षि ने लक्ष्मी को निर्वाण देकर जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति दी थी। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (१५)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

सिद्धाई से नैतिक पतन

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ, जो इच्छा करके पता नहीं कहाँ से जिस गंधवाली बुकनी का चूर्ण चाहिये वह निकाल दिया करता था। वह बुकनीवाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध था। जब हमलोग नागपुर में पढ़ते थे, तो ये बुकनीवाले बाबा बैलगाड़ी में अपने परिवार के साथ नागपुर के भिन्न-भिन्न भागों में घूमा करते थे। उनकी प्रसिद्धि बहुत बढ़ी थी। मुख्यमंत्री श्री रविशंकर शुक्ल से उनकी मित्रता थी। श्री द्वारका प्रसाद मिश्र उस समय मध्यप्रदेश के गृहमंत्री थे। बाबा नागपुर में उनके यहाँ बहुत आते-जाते थे। उनकी सिद्धाई किस प्रकार की थी? आप जा करके खड़े रहो, तो वे पूछेंगे तुम्हें किस गंधवाली बुकनी चाहिए? आपने कहा कि मुझे केवड़े की गंधवाली बुकनी चाहिए। वे हाथ फेरकर बुकनी आपको दे देंगे, आप सूंघ लीजिए, उसमें केवड़े की गंध है। यदि कोई गुलाब की सुगन्धवाली चाहे, तो उसको गुलाब की सुगन्धवाली बुकनी दे देंगे। यह उनकी सिद्धाई थी। यह सिद्धाई अन्त में उनके पतन का कारण बनी। मुख्यमंत्रीजी ने अपने घर पर आने से मना कर दिया। उनके बँगले के दरवाजे उनके लिए बंद हो गए। फिर एक छोटी-सी कुटिया छिंदवाड़ा रोड में बनाकर वे वहीं निवास करने लगे। तात्पर्य यह है कि ऐसे जो भूत-प्रेत को सिद्ध करनेवाले होते हैं, जब वे उनकी उपासना करते हैं, तो उनका उद्देश्य होता है छोटी-मोटी सिद्धाई प्राप्त कर लेना। ये लोग आध्यात्मिक दृष्टि से ऊपर उठे हुए नहीं होते हैं और ये मरने के बाद भी फिर से इसी लोक में आते हैं और अपने संस्कारों को लेकर आगे बढ़ते हैं।

यहाँ तीन प्रकार के उपासकों की बात भगवान अर्जुन को बता रहे हैं। ऐसे जो तीसरे प्रकार के उपासक हैं जिनमें तमोगुण की प्रधानता होती है, कभी-कभी ऐसा मालूम पड़ता है कि उच्च कोटि के साधक हैं। कभी ऐसा सुनेंगे आप कि बाबा के पास गए और उन्होंने इच्छा मात्र से या हाथ से स्पर्श करके किसी के रोग को दूर कर दिया। ऐसी बहुत-सी बात सुनाई पड़ती है, पर वस्तुत: इसके पीछे किसी प्रकार का आधार नहीं होता। ऐसा भी देखा जाता है, जैसे मान लीजिए किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात सुनाई पड़ी। सौ व्यक्ति उसके पास अपनी व्याधि को दूर करने के लिए जाते हैं। आप सुनेंगे कि उसमें से २०-२५ लोगों को लाभ हुआ है और वे कहते हैं कि हमारी व्याधि दूर हो गई और बाकी जो ७०-७५ लोग हैं, वे कहेंगे कि हाँ, गये तो थे, पर कोई विशेष लाभ हमें नहीं हुआ। अब यह २०-२५ व्यक्ति हैं, जिनको लाभ पहुँचा है, तो इनके विश्वास का प्रभाव दूसरों के ऊपर भी पड़ता है और यह प्रचारित हो जाता है कि उनके पास जाने से हमारे सारे रोग दूर हो जाते हैं। पर वस्तुत: ये जो २०-२५ व्यक्ति जा करके उपकृत होते हैं, यह उस व्यक्ति के कारण नहीं, बल्कि उनमें स्वयं के भीतर विश्वास पैदा हुआ, वे गए, उन्हें ऐसा लगा कि बस इन्होंने मुझे ठीक कर दिया है। मन में जो विश्वास आया, मन में जो विश्वास की गहरी पैठ हुई, उस विश्वास के कारण ये

व्यक्ति ठीक हो जाते हैं। मनोविज्ञान की चिकित्सा के अन्तर्गत इस प्रकार के उपाय की बात है। वहाँ पर यह कहा गया है कि यदि रोगी के मन में हम ऐसी बात बैठा दें या इस प्रकार का विश्वास भर दें कि तुम्हारा रोग दूर हो गया है, तो उस विश्वास से रोगी का रोग दूर हो जाता है। अमेरिका में spiritualist नामक एक सोसायटी बनी थी, जिसने spiritual healing प्रक्रिया को उन्होंने जन्म दिया। यह spiritual healing बहुत पुरानी बात है। इस मनोवैज्ञानिक ढंग से लोग चिकित्सा करते रहे हैं। जो मनोविज्ञान के द्वारा रोगी की चिकित्सा करता है, जब व्यक्ति उसके पास जाता है, तब वह मनोवैज्ञानिक रोगी को बैठाकर धीरे-धीरे उससे कहता है – तुम ऐसा सोचो कि तुम्हारे भीतर का रोग दूर हो रहा है। अच्छा बताओ, तुमको क्या रोग है? रोगी ने कहा कि मेरा दाँया हाथ ठीक से उठता नहीं है, यह सुन्न हो गया प्रतीत होता है। तब वह spiritual healer क्या कहेगा? वह कहेगा – अच्छा, कल्पना करो कि तुम्हारे इस दाहिने हाथ में रक्त का प्रवाह धीरे-धीरे बढ़ रहा है। तुम कल्पना करो कि तुम्हारे हाथ की सुन्नता धीरे-धीरे दूर हो रही है। वे इस प्रकार का विश्वास रोगी में भर देंगे और फिर अपने हाथ से स्पर्श करते हुए कहेंगे कि लो मैं तुम्हारे रोग को अपने स्पर्श के द्वारा दूर किए दे रहा हूँ। अब तुम अपनी इच्छानुसार अपने हाथ को उठा सकते हो, गिरा सकते हो, घुमा सकते हो। उसके बाद रोगी से हाथ घुमाने के लिए कहेंगे। रोगी के भीतर में आत्मविश्वास बढ़ता है और वह घुमाने की कोशिश करता है और देखता है कि हाथ थोड़ा-थोड़ा घूम गया। यह जो विश्वास उसके भीतर में पैदा हुआ, यह विश्वास ही उसके रोग को दूर करता है।

आप लोगों ने अंगुलवाले बाबा की बात पढ़ी होगी। एक अंगुलवाला बाबा को सुनकर अंगुल में कितने लोग गए। अंगुल एक छोटा-सा गाँव है। जब हम रायपुर या सम्भलपुर से जाते हैं पुरी की ओर तो अंगुल गाँव रास्ते में पड़ता है। आज से २०-२५ साल पहले की बात है। वहाँ पर न पीने के जल का प्रबन्ध था, न किसी प्रकार की समुचित व्यवस्था थी और हजारों लोग वहाँ रोज जाते थे। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि बम्बई से लोग स्पेशल बस करके अंगुल गये थे। इतना उस १०-११ साल के बालक बाबा का प्रचार हुआ था। वहाँ पर हैजा फैला। कितने लोग खत्म हुए यह तो नहीं मालूम, पर हैजे के कारण बहुत-से लोग मर गये, यह बात सत्य है। अंगुलवाले बाबा को बाद में मैंने एक जगह पर देखा, तब वह १८-१९ साल का युवक हो गया था। कुलांचे भरनेवाला और इस प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शित करनेवाला मानो वह छोटा-सा बच्चा हो। मैंने उससे कहा – 'क्यों भाई ! इतनी सारी चिकित्सा-विद्या तुम्हें आती थी, वह सब तुम भूल गये हो या अभी भी उसका ज्ञान तुम रखते हो?' वह कुछ नहीं बोला। मैंने कहा– 'तुम बताते क्यों नहीं? कितने लोग तुम्हारे पास गए, कितने लोगों को तुमने ठीक कर दिया। आखिर तुम्हारा चमत्कार क्या था?' अत्यन्त सरलता से, भोलेपन से वह बोलता है, 'अगर मेरे पास लोग आते हैं, तो मेरा क्या दोष है? लोग आते थे और वे मुझसे जड़ी और बूटी चाहते थे, तो मैं उनको दे देता था कि लो इससे तुम ठीक हो जाओगे।' मैंने पूछा– 'लोग कैसे वहाँ पर तुम्हारे पास गए?' उसने कहा– 'मैं क्या करूँ? कुछ लोगों ने ऐसे ही कह दिया और ऐसी बात उड़ा दी, दो-तीन लोग फँस गये, फिर सारी बात फैल गयी। लोग आने लगे, तो मेरे माता-पिता-चाचा ने मुझसे कहा कि देख अभी तुझे इधर-उधर नहीं करना है। लोग आएँगे, तो तू कुछ करतब करके फिर हाँ बोल देना, यह जड़ी-बूटी दे देना और इस प्रकार से नखरे करना कि ऐसा लगे कि ये बाबा तो बड़े अच्छे हैं, जल्दी से मानते नहीं। वह लड़का कितना सरल, कितना भोला था, उसने सरलतापूर्वक कहा कि मुझे कुछ आता नहीं था। वह तो लोगों ने मुझे पकड़कर मेरे भीतर चमत्कारी एक विद्या भर दी। मेरे भीतर कोई विद्या थोड़े ही है, मैं तो ऐसा ही हूँ।' तात्पर्य यह है कि इस प्रकार की घटनाएँ होती हैं कि किसी प्रकार की सिद्धाई किसी में नहीं होती है, लेकिन लोग उसका प्रसार कर देते हैं। लेकिन किसी में होती भी है, जैसे बुकनीवाले बाबा की बात मैंने कही। भूत-प्रेत की विद्या भी लोग साधते हैं, यह अत्यन्त सत्य बात है।

किन्तु भगवान कहते हैं – अर्जुन ! ये भूत-प्रेत की सिद्धाईवाले इसी में लगे रहते हैं। कभी-कभी यही उनके पतन का कारण होता है। ये नैतिक रूप से गिर पड़ते हैं। बुकनीवाले बाबा को हमने नैतिक रूप से गिरते देखा है। समाज में उनकी जो प्रतिष्ठा थी, उस प्रतिष्ठा को गायब होते देखा है, बाद में कोई उनको पूछता नहीं था। एक छोटी-सी कुटिया उन्होंने बना ली थी और वह भी किसी दूसरे की जमीन पर। एक दिन पास के किसान की जमीन को उन्होंने

थोड़ा-सा हड़प लिया और उस पर वे अपनी कुटिया का विस्तार करने लगे, अपने खेत का घेरा थोड़ा-सा बढ़ाने लगे। किसान आ करके कहने लगा – 'महाराज आप मुझ गरीब की जमीन को क्यों हथियाते हैं, क्यों इस ओर घेरा बढ़ाते हैं? आप अपने घेरे को दूर कर लीजिए। बाबा माने नहीं और उन्होंने कहा कि देखो यदि तुम मुझसे झगड़ा करोगे, तो मैं तुम्हारे खेत में साँप छोड़ दूँगा। साँप तुम्हें काट खाएगा और तुम मर जाओगे। किसान ने अपनी लाठी उठाई और बोला जब आप साँप छोड़ेंगे और साँप मुझे काटेगा, तब मैं मरूँगा, पर मैं देखता हूँ कि आप अभी मरेंगे। वह लाठी उठाकर उन्हें धमकाने लगा, तो उन्होंने अपना घेरा कम कर लिया। जितना उनका घेरा था, जितनी उनकी जमीन थी, वहीं तक कर ली। यह आँखों देखी हुई बात है कि ऐसे भी लोग होते हैं। यह सिद्धाई और चमत्कार और उस चमत्कार के ऊपर में लोग बहुत बड़ा बन जाने की घोषणा कर देते हैं। समाज में धीरे-धीरे लोग उनकी प्रतिष्ठा करने लगते हैं, पर ऐसे लोग उस प्रतिष्ठा के कारण गिर भी पड़ते हैं।

भक्त स्वर्ग को नहीं ईश्वर को चाहता है

भगवान ने कहा कि अर्जुन ! जो लोग देवताओं की उपासना करते हैं, जिनमें सत्त्वगुण की प्रधानता है, वे तो मरकर स्वर्ग लोक को जाते हैं। जिनमें रजोगुण की प्रधानता है, जो धर्म का, पूजा-उपासना का, आध्यात्मिकता का दिखावा करते हैं, ऐसे लोग निम्नतर स्वर्ग को जाते हैं, जिसको हम पितृलोक के नाम से पुकारते हैं। जो भूत-प्रेत की उपासना करते हैं, जिनमें तमोगुण की अधिकता है, ऐसे लोग संसार में कुछ प्रतिष्ठा तो प्राप्त करते हैं, पर बाद में यही प्रतिष्ठा उनके पतन का कारण बनती है और वे इसी संसार में आते हैं। अर्जुन, जो केवल मुझे चाहता है, जो देवताओं को नहीं चाहता, स्वर्ग को नहीं चाहता, पितरों के पास नहीं जाना चाहता, जो कहता है कि मेरे एकमात्र प्रियतम भगवान ही हैं और मैं उन्हीं को पाना चाहता हूँ। इस प्रकार की भावना जिसके मन में होती है, अर्जुन ! वह मुझको ही प्राप्त करता है।

अर्जुन ! मेरे लिए भावना ही यथेष्ट है। देना तो भावना का प्रतीक है। जो भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल कुछ भी मुझे प्रदान करता है, मैं उसे उसी प्रकार ग्रहण करता हूँ। उससे ही मैं प्रसन्न होता हूँ अर्जुन ! यह मेरा नियम है। इसलिए मैं तुझसे पत्र-पुष्प भी देने की बात नहीं कहता, फल-जल इत्यादि की बात नहीं कहता, अर्जुन ! तू क्या कर? तू जो कुछ भी खाता है, उसका फल तू मुझे दे दे, तू जो कुछ भी हवन करता है, दान देता है, जो कुछ तपस्या करता है, उसका सारा-का-सारा फल तू मुझे दे दे।

कर्मफल द्वारा संन्यासयोग की प्राप्ति

किन्तु हम कर्म कुछ फल पाने की इच्छा से करते हैं, तो भगवान को उन कर्मों को कैसे सौंप दें? कर्मों को कैसे सौंपा जाता है? हम संसार में रहते हैं, तो संसार में रहते हुए संन्यासवृत्ति कैसे आती है? अठाइसवें श्लोक में जो संन्यासयोगयुक्तात्मा कहा गया है, तो कैसे संसार के कर्म करता हुआ, भव के जंजाल से मुक्त होकर संन्यासयोग से युक्त हो जाता है, मुझे प्राप्त कर लेता है? भगवान कहते हैं – यत्करोषि, तू जो कुछ करता है, उसको मुझे अर्पित कर दे। किस प्रकार से अर्पित करें, वह करने का तरीका क्या है? **(क्रमशः)**

पृष्ठ १२९ का शेष भाग

करना, उसके बाद ज्ञान का जो अन्तरंग साधन है – श्रवण-मनन-निदिध्यासन ये सब।

महाराज – निष्ठा माने 'नितरां स्थिति'। निष्ठा माने दृढ़ता नहीं, निष्ठा माने उसमें स्थिति। ज्ञान में जब स्थिति होती है, तब प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है। जब प्रज्ञा प्रतिष्ठित हो रही है, तब ध्यान की अवस्था है। उस समय कर्म के साथ विरोध है। उसके पहले तक विरोध नहीं है। यही हमारा विचार है। क्योंकि स्वामीजी का कर्म और ध्यान, ये दोनों विरोधी नहीं हैं। लेकिन यदि कर्म ठीक से करता रहे, तो वह कर्म व्यक्ति के साधना-मार्ग में अग्रसर होने में बाधा नहीं है, अर्थात् यदि वह उसके साथ विचार करे, लक्ष्य के सम्बन्ध में सावधान रहे, तो कोई असुविधा नहीं होती है। **(क्रमशः)**

इस कलियुग के लिए भक्तियोग ही श्रेयस्कर है। इस मार्ग पर चलने से अन्य मार्गों की अपेक्षा भगवान के पास सरलता से पहुँचा जाता है। ज्ञान और कर्म के मार्ग से भगवान के समीप निःसन्देह पहुँचा जा सकता है, किन्तु वे मार्ग हैं बड़े कठिन। – श्रीरामकृष्ण देव

पृष्ठ १२७ का शेष भाग

है – पुरुषार्थ करो, कर्म करो। तुम कर्म करने के लिये बाध्य हो। गीता कहती है – बिना कर्म किये मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। गीता के भी कई वर्ष पहले उपनिषद की वाणी है – कर्म करते हुए जीने की इच्छा करो। अखण्ड कर्म करो, जब तक देह न गिर जाए। जीवन की चुनौतियों को स्वीकार करो। जो भी संसार में पाने के योग्य है, उसे पाने के लिए कर्म करो। इसके लिये शक्ति, समय लगेगा। यही हिन्दू-दर्शन की सबसे बड़ी देन है। जिसे हम भूल गये हैं। पुरुषार्थ करने से पहले पुरुषार्थ करने की विद्या सिखो। मन से, बुद्धि से, शरीर से पुरुषार्थ करते-करते थकोगे, तो थोड़ा विश्राम करो। नहीं तो, घोड़ा दौड़ते-दौड़ते मरता है, वैसे ही पुरुषार्थ, करते-करते ही मर जाओगे। तो थोड़ा ठहरो, सोचो, फिर यात्रा करो। सुख के लिये कमाया, बच्चे पैदा किये, क्या मिला? २५ वर्ष बहुत परिश्रम किया है। सोचो, क्या किया – वही खाना-सोना, कमाना आदि की आवृत्ति होती रही, पंखे के समान चलते रहे। क्या उससे सुख मिला? अब इन सबसे छूटो। पहले तो कहा पुरुषार्थ करो, अब बोलते हैं, इनका त्याग करो।

तुम गोलगोल घुमते रहे, कहीं भी नहीं पहुँचे। ऋषि कहते हैं – अब पुरुषार्थ से, कर्म से, बाहर निकल जाओ, फिर मोक्ष की बात करो। मन की, शरीर की दासता से मुक्त हो जाओ। मोक्ष क्या पुरुषार्थ है? अर्थ और काम के त्याग के बिना करोड़ों जन्म तक मोक्ष पुरुषार्थ नहीं मिलेगा।

पुरुषार्थ से धर्मानुसार अर्थ, काम और जीवन के सारे सुखों का उपभोग करो, अनुचित मार्ग से नहीं। ऐसा धर्म जो यहाँ हमें सुख दे, मरने के बाद मोक्ष दे।

जीवन की सफलता है – स्वामी के रूप में संसार का भोग करना, दास के स्वरूप में नहीं। धर्म, अर्थ, काम से हमारे जीवन में कौन सा पुरुषार्थ प्रबल है, सोचो। धर्म अगर हमारे जीवन में प्रबल नहीं है, तो काम और अर्थ पुरुषार्थ प्रबल हो जायेंगे। जीवन में सफलता का रहस्य है – धर्म और धैर्य से काम, अर्थ का भोग भोगकर मोक्ष की ओर जाएँ। स्वधर्म छोड़ने से धर्म और मोक्ष चला जाता है। केवल काम और अर्थ पुरुषार्थ में फँसे लोग दूसरी योनि में चले जायेंगे। अत: स्वधर्मपालन करते हुए जीवन का प्रत्येक व्यवहार संतुलित हो। स्वधर्म पुरुषार्थ से जीवन परम सफल हो जाता है। OOO

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में ५ जनवरी, २०२१ को श्रीरामकृष्ण देव की लीला-सहचारिणी श्रीमाँ सारदा देवी का जन्मोत्सव मनाया गया। मुख्य मन्दिर में विशेष-पूजा-हवन, भजन, भोग, आरती और माँ सारदानाम का गायन हुआ। इस उपलक्ष्य में दो दिन पूर्व रायपुर से २० किलोमीटर दूर खारुन नदी के तट पर स्थित अकोला ग्राम के ५ ईंट-भट्ठी के १३४ मजदूरों तथा आश्रम कर्मचारियों में कुल १५९ कम्बल वितरित किये गये।

श्रीमाँ सारदा जयन्ती तथा राहत कार्य, रायपुर आश्रम

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा किये गये राहत कार्य –

रामकृष्ण मिशन आश्रम, गोहाटी, असम ने ३० सितम्बर को मोरीगाँव जिले में (स्वास्थ्य एवं स्वच्छता) जागरूकता शिविर आयोजित किया एवं २०० लोगों को किट वितरित किये। प्रत्येक किट में मल्टी विटामिन सिरप, एक पौष्टिक पेय का डब्बा, एक पैकेट फल जूस, एक डब्बा लिक्विड हैंडवाश और पाउडर उपलब्ध था।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, करीमगंज, असम ने जिले की सुदूर सीमाओं में रह रहे ३०० परिवारों में, ३०० किट बाँटे। प्रत्येक किट में ३५० ग्राम सोया चन्कस, ५०० ग्रा. पौष्टिक पेय, २ पैकेट बिस्कुट, एक साबुन टिकिया एवं २ फेस मास्क थे।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, सिल्चर, असम ने कयर जिले के चार पिछड़े क्षेत्रों में २२ से २८ सितम्बर तक स्वास्थ्य एवं स्वच्छता शिविर का आयोजन किया एवं ५७० लोगों में ५०० ग्राम पौष्टिक पेय, एक सेब, एक साबुन टिकिया एवं फेस मास्क बाँटा।

बिहार : रामकृष्ण मिशन आश्रम, छपरा, बिहार ने स्वास्थ्य, पौष्टिकता, बच्चों के पालन-पोषण, स्वच्छता और शुद्ध पेय जल के सम्बन्ध में जागरूकता हेतु कार्यक्रम का आयोजन ४ अक्तूबर को किया, जिसमें ६० विद्यार्थियों एवं उनके अभिभावकों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, पूर्णियाँ, बिहार ने स्वास्थ्य, स्वच्छता, पौष्टिकता बच्चों के पालन पोषण, सेनीटेशन एवं शुद्ध पेयजल के सम्बन्ध में ऑनलाइन जागरूकता कार्यक्रम किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़ ने ४० अभावग्रस्त परिवारों में २०० किलो आटा, ४० किलो दाल, ५० किलो आलू, ४० लीटर तेल, ४० किलो नमक एवं ४० पैकेट हल्दी पाउडर का वितरण किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर, छत्तीसगढ़ ने सितम्बर माह में विभिन्न सुदूर गाँवों में आहार, व्यक्तिगत स्वच्छता, स्वास्थ्य, सामूहिक आचार-व्यवहार में बदलाव एवं वृक्षारोपण सम्बन्धी १५ जागरूकता अभियान चलाये। इसके अतिरिक्त निम्नांकित कार्य भी किये – (अ) ५ आयु के ५५७ बच्चों के स्वास्थ्य की जाँच की गई एवं ६४ अतिकुपोषित एवं ४७ कुपोषित बच्चों को चिह्नित किया गया। अति कुपोषित बच्चों को पोषण पुनर्वास केन्द्र लाकर १५ दिनों तक पूरक आहार प्रदान किया गया। (ब) १४ परिवारों के लिये आदर्श रसोई बगीचे का निरूपण किया गया। (स) शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने हेतु २० ग्राम पंचायतों से जाँच हेतु जल एकत्रित किया गया एवं २५० हैण्डपम्प लगाये गये। (द) जन जागरुकता हेतु १० ग्राम पंचायतों में दीवारों पर शिक्षाप्रद संदेश लिखे गये।